ISSN 2582-0133
साइकिल
बच्चों का दुमहिया
वर्ष 4 अंक 1
अप्रैल - मई 2021
मूल्य ₹125

वर्ष 4 अंक 1 अप्रैल - मई 2021

सम्पादन सुशील शुक्ल, शशि सबलोक
सहायक सम्पादक निधि गौड़, चन्दन यादव

डिज़ाइन तापोशी घोषाल
आवरण चित्र तापोशी घोषाल

वितरण राजेन्द्र परमार, अनीता शर्मा

अवधि	अंक	सदस्यता दर (पंजीकृत डाक शुल्क सहित)
एक साल	6	रु. 750
दो साल	12	रु. 1500
तीन साल	18	रु. 2250
		एक प्रति - रु. 125

भुगतान विवरण - बैंक ड्राफ्ट/चेक
इकतारा ट्रस्ट Ektara Trust के नाम नई दिल्ली में देय
ऑनलाइन ट्रांसफर - आई.सी.आई.सी.आई बैंक,
बी-78 डिफेंस कॉलोनी, नई दिल्ली
खाता नम्बर - 630001028225, IFSC ICIC0006300
में भेजें।
ऑनलाइन खरीद की लिंक
www.ektaraindia.in/order-publication/
भुगतान और वितरण की पूरी जानकारी
publication@ektaraindia.in पर दें।

इकतारा **तक्षशिला का बाल साहित्य एवं कला केन्द्र**
ई-1/212, अरेरा कॉलोनी, भोपाल 462016
फोन 0755-4939472, 9109915118, 9630097118
ई-मेल cycle@ektaraindia.in
वेबसाइट www.ektaraindia.in
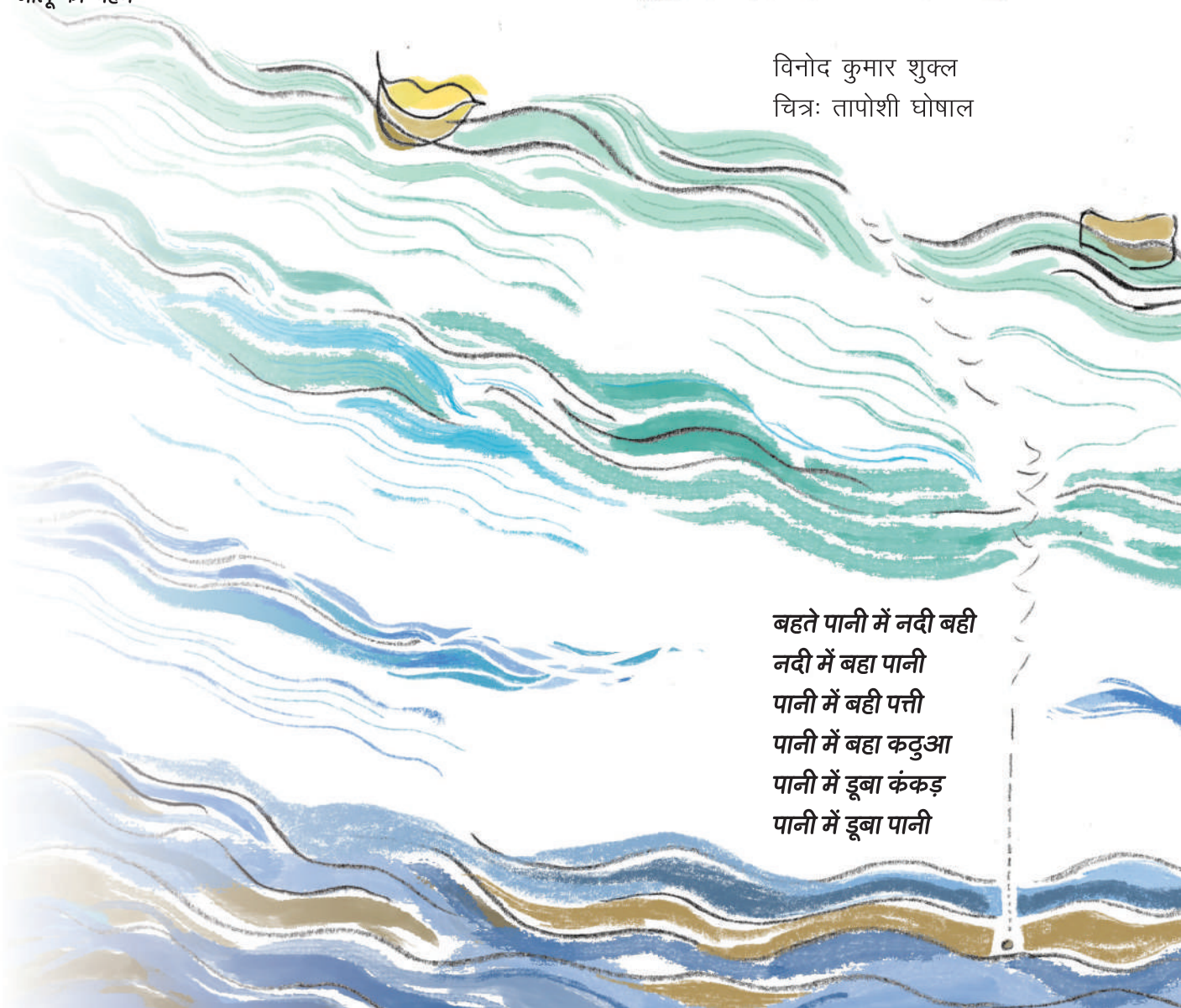
बहते पानी में नदी बही

विनोद कुमार शुक्ल
चित्रः तापोशी घोषाल

बहते पानी में नदी बही
नदी में बहा पानी
पानी में बही पत्ती
पानी में बहा कद्दुआ
पानी में डूबा कंकड़
पानी में डूबा पानी

भूख की कहानी

उपासना
चित्रः तापोशी घोषाल
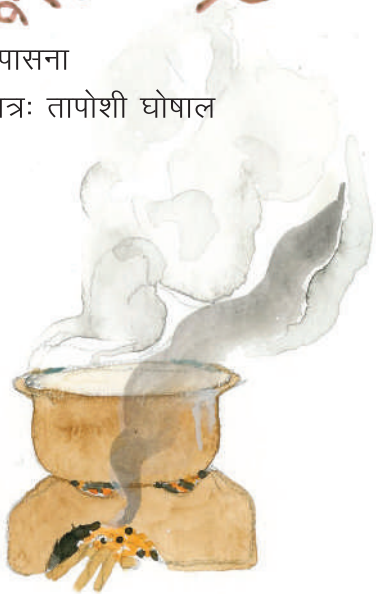
भूख को कोई आवाज़ नहीं देता। वह खुद चली आती है। दबे पाँव। जब वह करीब पहुँचती है तब तेज़ हो जाती है। चालाक और शैतान भी।

यूँ भूख दिखने में छोटी है पर ज़रा इसकी उमर तो देखो। हमारी दादी की दादियों को भी भूख लगती थी। हमारा सबसे पहला पूर्वज भी भूख के साथ ही पैदा हुआ होगा।

भूख का एक दोस्त भी है। उसका नाम है स्वाद। भूख और स्वाद की दोस्ती पक्की है। स्वाद भूख के बिना कहाँ जाता है? भूख भी स्वाद को लेकर चलती है।

देवीलाल दिनभर ईंटें ढोते हैं। नदी पर बड़ा पुल बन

रहा है। जब थक जाते हैं तो आम से टिककर सुस्ता लेते हैं। पोटली में बँधी सूखी रोटी और प्याज़ खाते हैं। कभी सत्तू को गूँथकर उसके सोंधे गोले पानी के साथ खाते हैं। कहते हैं कि

नींद न देखे टूटी खाट,
भूख न देखे जूठा भात

भात पकने की गंध!!

गंध भूख की जासूस है। जब भूख पेट में साठ चूहे दौड़ाती है, तब दूर दराज से गंध भागी चली आती है। गंध, भूख के कान में फुसफुसाती है – पड़ोस में भात पक रहा है।

हड़िया में चावल धीरे-धीरे सीझता है। सीझता चावल जब भात बनता है तब उसकी गंध भूख की दुनिया की सबसे सुन्दर गंध होती है। भात पकने की गंध चूहों को मोटा कर देती है। भूख के चूहों की उछल-कूद तेज़ हो जाती है। गर्म भाप उठाता गीला भात! भात के अलावा भूख और किसी चीज़ से नहीं बहलती। न ईश्वर से, न प्रेम से...। जब भात नहीं मिलता तो चूहे धीरे-धीरे इंसान को खाने लगते हैं।

माया सोमू
चित्रः चिनमई सामंत

मैं और चिराग रोज़ की तरह आज भी बीनने के लिए लालघाटी गए। हम वहाँ पहुँचे तो देखा कि कचरे के ढेर से माल बीना जा चुका था। मैं और चिराग सोचने लगे "अरे यार, अब क्या करें? इतनी दूर पैदल चल के आए हैं, खाली हाथ घर गए तो मार पड़ेगी।"

तभी चिराग बोला, "अबे अपन पटरी वाले इलाके में चलते हैं।" हम दोनों उस इलाके में गए। वहाँ पर बड़ी कॉलोनी है। वहाँ के लोग पटरी के पास वाली खाली जगह पर खूब कचरा फेंकते हैं। हमने माल बीना और उसे बेचा। तीन सौ रुपए मिले। हमने होटल से समोसा और जलेबी खरीदा और एक जूते की दुकान के पास बैठ कर खाया।

हमने सोचा अब पेट भर गया है तो थोड़ा खेल लें।

जहाँ हम थे उसके पास ट्रेन की पटरियाँ बिछी हुई थीं। हम वहीं पटरी पर चलते हुए खेलने लगे। काफी समय हो गया। हम पटरी पर बैठ गए। मैंने चिराग से कहा, "मुझे ट्रेन में बैठना बहुत पसन्द है। उसकी कु...कु...कु... कु की आवाज़ बहुत अच्छी लगती है।" हम एक-दूसरे को अपनी-अपनी ट्रेन से जुड़ी बातें बताने-सुनने में खो गए।

अचानक बिना सीटी की आवाज़ दिए बहुत तेज़ी से ट्रेन आई। ट्रेन इतनी स्पीड में थी कि हम भौंचक्के रह गए। दिमाग सुन्न पड़ गया। चिराग ने मुझे तेज़ी से धक्का दिया और मैं पटरी से थोड़ा दूर जा गिरी। वह भी उसी वक्त तेज़ी से कूद गया।

ट्रेन धड़.. धड़.. धड़.. धड़.. करती चली गई।

हम दोनों उठे और एक-दूसरे के गले लगे। दोनों के दिल तेज़ी से धड़क रहे थे। हमें ट्रेन से कम, पटरी से ज़्यादा डर लगने लगा था। अब हमको घर जाना था। जैसे ही घर गए, हमने बोरी रखी और अपनी दीदी को सारी बात बताई। मैंने कहा, "दीदी देखो, दिल अभी भी धक.... धक कर रहा है।"

गाँधी

प्रभात

चित्रः हकु शाह

कभी कभी सोचूँ कि अगर हों
गाँधी जैसे पाँव
तुरत उठूँ चल पड़ूँ न देखूँ
कभी धूप और छाँव

कभी कभी सोचूँ कि अगर हों
गाँधी जैसे हाथ
बकरी को भी रखूँ पास में
और खिलाऊँ घास

कभी कभी सोचूँ कि अगर हों
गाँधी जैसी आँख
जाकर देखूँ झोंपड़ियाँ
चूल्हे में उड़ती राख

कभी-कभी सोचूँ कि अगर हो
गाँधी का चश्मा
तो मैं यह कह सकूँ सभी की
है भारत माँ

सब बातें अच्छी कोई भी
बात नहीं मुश्किल
तो फिर क्यों पग पग डरूँ
क्यों धक धक मेरा दिल

मरने वाले की याद में

चन्दन यादव

कुछ दिनों पहले मैं काँकेर के पास के गाँवों में गया था। वहाँ सड़क किनारे के खेतों में बनी ये समाधियाँ देखीं। ये यादगारें बहुत दिलचस्प हैं। इन्हें देखकर मरने वाले की पसन्द और पेशे का पता चल जाता है। एक समाधि पर एक सज्जन की मूर्ति बनी थी। वे गोद में किताब लिए तनकर बैठे थे। पता चला कि वे शिक्षक थे। एक समाधि पर बैलगाड़ी चलाते एक सज्जन की मूर्ति बनी थी। एक और समाधि पर एक व्यक्ति कंधे पर हल लिए बैठे थे। वे दोनों ही किसानी करते थे। एक समाधि पर सिर्फ बैल बने थे। जिनकी यह समाधि थी, उनको अच्छी नस्ल के बैल पालने का शौक था।

ये समाधियाँ श्मशान या कब्रिस्तान जैसी जगहों पर नहीं थीं, जैसा कि कस्बों और शहरों में होता है। मरने वाले की अन्तिम क्रिया अपने परिवार की ज़मीन पर ही की गई है। वहीं इन समाधियों को बनाया गया था। मुझे साहिर की वो नज़्म याद आ गई - एक शहंशाह ने बनवा के हसीं ताजमहल, हम गरीबों की मुहब्बत का उड़ाया है मज़ाक।

एक तमिल कहानी

एस. रामकृष्णन
अनुवादः मीनाक्षी नटराजन
चित्रः एलन शॉ

एक सभा में किसी ने अपनी हालिया यात्रा का हाल कुछ यूँ सुनाया -

महानगर में एक नया नियम लागू हुआ है। सरकार ने स्त्री-पुरूष को बराबर मानते हुए एक निर्णय लिया कि अब से सब टोपी पहनेंगे। एक ने पूछा, "टोपी पहनना क्यों ज़रूरी किया?"

"टोपी एक पहचान है। सरकार के प्रति आस्था की पहचान, इसलिए।" दूसरे ने झट से जवाब दिया।

"ठीक ही किया।" एक महिला ने सहमति जताई। "सरकार ने ये खास टोपियाँ बाँटी हैं।
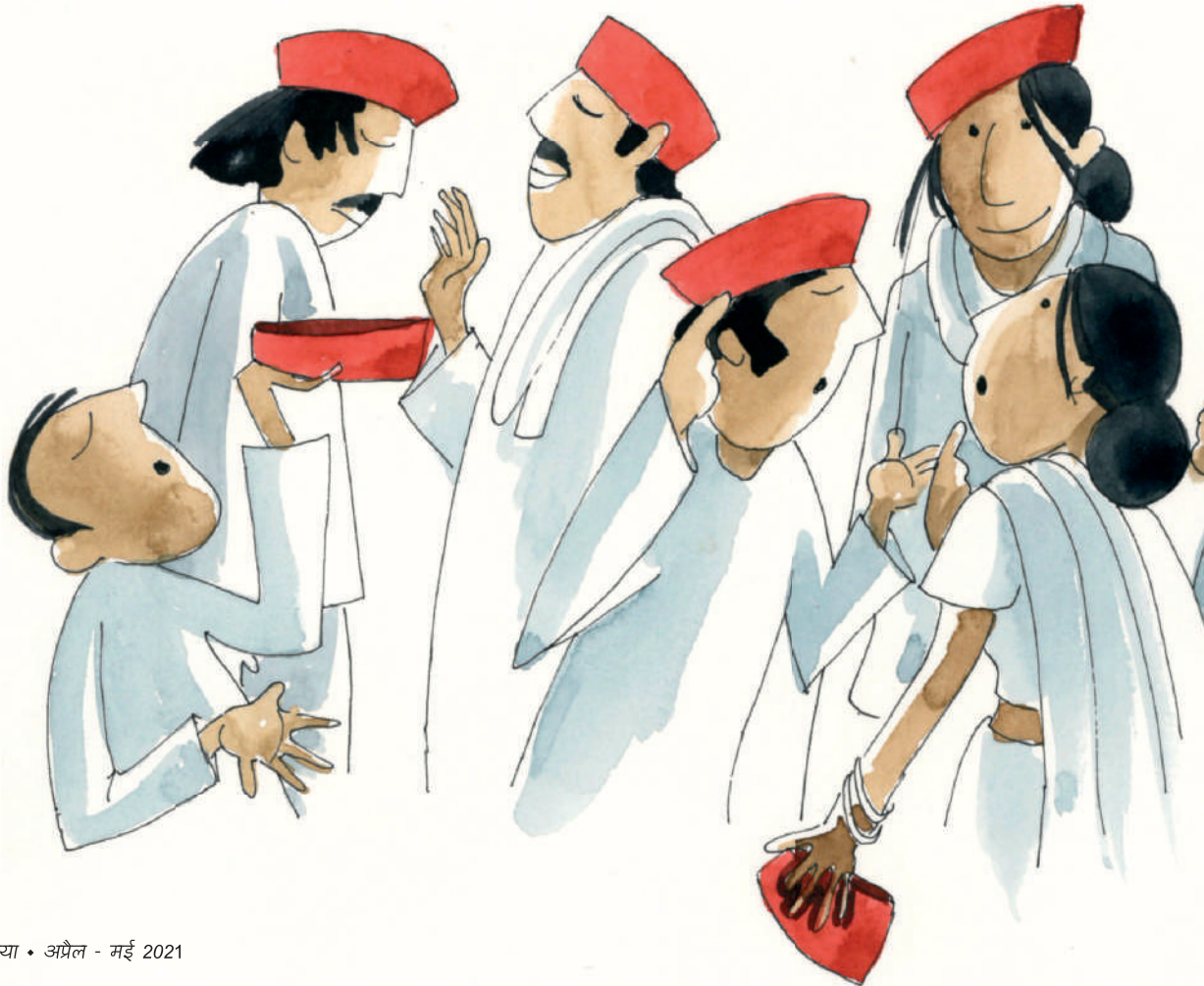
पहचान पत्र दिखाओ और अपनी टोपी ले जाओ।" "अब टोपी ही असल पहचान है। जो लोग बिना टोपी के दिखेंगे, उन्हें जेल में डाल दिया जाएगा।" "कोई कहीं जाए तो टोपी लगाकर जाए। सोए तो टोपी पहनकर ही सोए।"

मैंने देखा, दिन हो कि रात सब लोग टोपी के साथ ही घूमते हैं। है विचित्र किन्तु सत्य है।

"कितनी सुन्दर बात है। क्यों न हम भी यही नियम अमल में लाएँ।" सभा में हर कोई खुश हो उठा।

"सुझाव अच्छा है। लेकिन हम उनकी योजना ज्यों की त्यों क्यों लागू करें। हमें कुछ अलग करना चाहिए।" सभापति बोला।

"टोपी की जगह क्यों न मिट्टी का घड़ा सिर पर धरने का नियम बनाएँ? इससे घड़ों का व्यापार भी बढ़ेगा। और नवाचार भी होगा।"

सभा के एक और व्यक्ति ने भी अपनी अक्लमन्दी दिखाई, "इसमें सूझ नहीं है। घड़ा भारी होता है।" महान सभापति गहरी सोच में पड़ गया। वह अकसर चिन्तन में पड़ जाता था। वह जितना चिन्तन में पड़

जाता, उसकी नाक लम्बाती जाती।

उसकी लम्बी नाक को लोग देखते रहे। नाक लम्बी होती गई। अचानक उसने कहा, "रास्ता निकल आया है। हम पहनेंगे तो टोपी ही। लेकिन सिर पर नहीं पैरों पर। यह बात आज तक किसी के दिमाग में नहीं आई होगी। हमें यह गौरव हासिल होगा। तो आज से हमारे यहाँ सभी जन पाँव पर टोपी पहनेंगे। जो इसे नहीं मानेगा दण्ड पाएगा। बात थी ही इतनी सूझ भरी कि सब अश अश कर उठे! वाह, क्या योजना है।" हर कोई दाद जल्द से जल्द दे देना चाहता था। सभापति ने इस नियम पर झट से मोहर लगा दी। ढिंढोरची ढिंढोरे पीटने निकल पड़े। चारों तरफ सबको नियम बता दिया गया।

अगले दिन से सब ने अपने-अपने पाँव में एक टोपी लगाई। मगर इस नियम में एक बड़ी समस्या खड़ी हो गई। समस्या यह है कि टोपी आखिर किस

पाँव में लगाएँ? नियम में यह बात साफ नहीं की गई थी।

सभा फिर बैठी। यह तुरत ही समझ में आ गया कि लोग अपने हिसाब से किसी भी पैर को चुनकर टोपी लगाएँ यह बात ठीक नहीं है। इससे मनमानी बढ़ने का अंदेशा है। लोग मर्ज़ी के मालिक हो सकते हैं।

सभापति का सुझाव सबसे पहले आया, "सिर के ठीक सामने जो पैर पड़े उसी में टोपी पहनी जाए।" "लेकिन सिर तो दोनों पैरों से समान दूरी पर है। पैर तय करना मुश्किल हो जाएगा।" एक अन्य ने अपनी अकल लड़ाई।

"सोमवार को सीधा पाँव, मंगल को उल्टा पाँव, बुध को फिर सीधा। ऐसे ही बारी-बारी से बदल-बदल कर टोपी पहनी जाए।" एक और अक्लमन्द ने अपनी अकल चलाई।

यह युक्ति थी ही इतनी शानदार कि सबको पसन्द आई।

इस फैसले के बाद सब पैर में टोपी लगाकर रहने लगे। टोपी पैर में टिक नहीं पाती थी। टोपी कोई टिका भी ले तो चले कैसे? मगर टोपी पहनने से बचना मुश्किल था। जो बिना टोपी पहने दिख जाता, उसे गिरफ्तार कर लिया जाता।

जब यह समस्या बहुत बढ़ गई तो फिर सभा बुलाई गई।

"हर नई नीति शुरू में थोड़ा कष्ट देती है।" सभापति गुस्से में बोले। "टोपी पहनकर खेत में काम नहीं हो पाता। पैर कीचड़ में धँस जाता है।" एक किसान ने कहा।

"पेड़ पर चढ़ नहीं पाते।" अन्य ने हाथ जोड़कर विनती की।
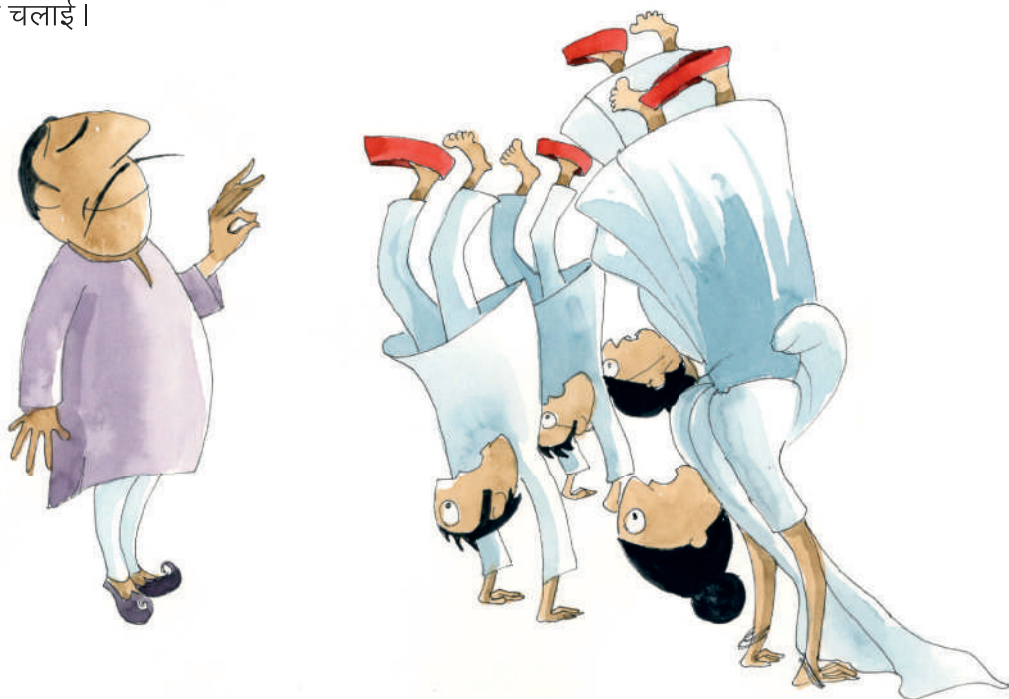
“खेला नहीं जाता।“ नौजवानों ने कहा।

सभापति को समझ नहीं आ रहा था कि क्यों इस छोटी-सी बात को लोग बढ़ा-चढ़ाकर बता रहे हैं। फिर भी वे चिन्तन करने लगे। चिन्तन करने से उनकी नाक फिर बढ़ने लगी। सभापति को आखिर एक सुझाव आ ही गया। “टोपी पहनकर चलना मुश्किल होता है। यानी मुश्किल टोपी की वजह से न होकर चलने की वजह से है। तो क्यों न पैरों से चलना ही बन्द कर दिया जाए। हाथ टिकाकर चला जाए। पैर हवा में रखकर। इससे टोपी भी अटकी रहेगी। लोगों को टोपी को सम्भालना नहीं पड़ेगा।”

यह सुझाव सुनते ही सारे के सारे सभासद् सभापति के पैरों में गिर गए। सब उनके दिमाग की तारीफ करने लगे, “क्या बात है, कितना सुन्दर आइडिया है।”

उस दिन से उस इलाके के लोगों ने पैरों से चलना बन्द कर दिया। वे सिर झुकाकर हाथों के बल चलने लगे। वह दिन और आज का दिन फिर कभी किसी ने टोपी के कष्ट की कोई शिकायत नहीं की। न ही कोई दूसरी शिकायत उसके बाद सभापति के सामने आई।

1 हाथियों के आठ पैर कब दिखते हैं?

2 घोड़ा मीनार पर कूदा और वह गिर पड़ी। कल्पना में नहीं सच में। यह कहाँ हुआ पता है?

3 सुइयाँ तो मैं हज़ारों लेकर चलता हूँ।
मगर मैं सिलाई-विलाई नहीं करता।

4 "कलाई पर इसे बाँधा
मगर फिर भी ये उड़ता है"
गुलज़ार साब इस कविता में किस चीज़ के बारे में लिख रहे हैं?

5 देखना कितनी तरह से होता है?
हिन्दी के प्रसिद्ध कवि नरेश सक्सेना कहते हैं कि देखना हमारी भाषा में बहुत दिलचस्प चीज़ है। हम चखकर देखते हैं। हम बोलकर देखते हैं। हम सुनकर देखते हैं। चलकर देखते हैं। छूकर देखते हैं। पूछकर देखते हैं। तुम इस सूची को कितना लम्बा कर सकते हो और इससे हमें क्या बात समझ आती है?

6 2, 4, 2, 6, 4, 10, 6, 16, 10, ... अगला अंक कौन-सा होगा?

7 पाँच रुपए के चार सिक्कों को इस तरह जमाओ कि उनके बीच की दूरी एकदम बराबर रहे।

8 कहते हैं कि भूत ऊत कुछ नहीं होता है। फिर भी अगर भूत से ऊत निकाल दें तो क्या बचेगा?

1. जब 2 हाथी हों, 2. शतरंज में, 3. साही, 4. समय, 6. 26, 8. भ
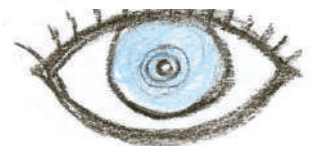
है भी, नहीं भी!

प्रिया कुरियन

हमारी दुनिया पेड़-पौधों, पत्तियों, फूलों, बीजों, कितने ही आकारों, रंगों, रूपों से भरी हुई है। यह खूबसूरती हमसे छूटी रहती है। चलो, इस निराली दुनिया को देखते हैं। निहारते हैं। जो दिखता है वह उतना भर नहीं है। उसमें कितने ही जादू हैं जो एकदम सामने नहीं आते।

इस चित्र का एक हिस्सा चित्रकार को बना बनाया मिला। एक हिस्सा चित्रकार ने जोड़ा है। और इस तरह इस चित्र को एक नई पहचान मिली है। यह जुगलबन्दी तुम भी कर सकते हो।

चप्पलें

सोनिका कौशिक
चित्रः तापोशी घोषाल

लिपू, टूना, जॉली, बुलू, चौगुली और मैं, हम पाँच की टोली थी। एक ही गाँव में रहते थे। एक ही स्कूल में पढ़ते थे। एक दो साल आगे-पीछे की कक्षाओं में थे। स्कूल के बाद हम खूब साथ रहते। छुट्टियों में भी हम स्कूल के मैदान में मिलते। जून का महीना था। स्कूल की छुट्टियाँ थीं। हम चार दिनों से टूना का इन्तज़ार कर रहे थे। उसके घर के चक्कर भी लगाए। हमको देखकर वो घर के भीतर दौड़ जाता। उसके बाबा कलकत्ता से लौटे थे, ये हम जानते थे। पर चार दिन से खेल से गायब रहना समझ नहीं आ रहा था। उसके बिना हमारे खेल बिगड़ रहे थे। उस शाम हम सब उससे उखड़े बैठे थे। बुलू स्कूल की बची हुई टूटी दीवार पर बैठा अपनी टाँगें झुला रहा था। लिपू, जॉली और मैं ज़मीन पर उकड़ू बैठे थे। अचानक बुलू मुण्डेरनुमा दीवार से नीचे कूदा और चिल्लाया, "लो! आ गया टूना।"

हम तीनों झट से खड़े हो गए। टूटी दीवार के पार वो दूर नज़र आया।

"इसको क्या हुआ?" जॉली ने उसे देखते ही कहा।

उसकी चाल बदली-सी थी। उसका बायाँ हाथ आगे-पीछे झूल रहा था। और दाहिना शरीर से सटा हुआ था। तेज़ कदमों से चलता टूना हमारी तरफ आ रहा था।

"कहाँ था रे तू? इतने दिन से खेलने क्यों नहीं आया?" उसके पास आते ही लिपू बोला।

टूना के चेहरे पर ऐंठी-सी मुस्कराहट थी। बगल में उसने कुछ दबा रक्खा था। "बाबा कलकत्ते से आए हैं। और ये लाए हैं।" कहते हुए टूना ने बांग्ला अखबार में लिपटा सामान हमारी ओर बढ़ा दिया।

"क्या है ये?" मैंने पूछा।

टूना ने अखबार को इस झटके से खोला जैसे दुकान में दुकानदार कपड़े को झटके से फैलाकर दिखाता है। पाँच जोड़ नंगे पाँवों के बीच एक जोड़ हवाई चप्पल धप्प से गिरीं। मोटे सफेद तले पर पतली नीली पट्टी। पहली बार हमने इतनी साफ

और नई चप्पलें देखी थीं। हमारी नज़रें उससे हट नहीं रही थीं।

"मेरे लिए लाए।" टूना ने हमें जताया।

हममें से किसी के पास चप्पलें नहीं थीं। न उस मैदान में, न घर में। गाँव में चप्पल केवल कुछ ही लोगों के पास थी। ये वो लोग थे जिन्हें काम के लिए शहर जाना पड़ता था। मजबूरी में खरीदी गई चप्पल गाँव के चार लोगों के बीच हैसियत बढ़ा देती थी। टूना को तो बिना किसी मजबूरी के ही चप्पल मिल गई थी। और हमारे बीच हैसियत भी।

"तूने पहनी क्यों नहीं?" जॉली ने पूछा।

"गन्दी हो जाएगीं। शनीचर को जब बाज़ार जुड़ेगा तो पहनकर जाऊँगा।" टूना हवा में फड़फड़ाते अखबार को सम्भालते हुए बोला।

"बाज़ार में तो कितना कीचड़ होता है!" लिपू झट बोला। टूना को यह ख्याल शायद नहीं आया था। वो इतना ही सोच पाया था कि कितने सारे लोग उसको चप्पल पहने देख पाएँगे। जॉली का सब्र खत्म हो रहा था। टूना और लिपू की बात काटते हुए वो बोली, "पहनकर तो दिखा।"

हिचकिचाते हुए टूना ने अपने पाँव चप्पल के जोड़े में सरका दिए।

"उल्टी पहनी है।" जॉली ने उसे टोका।

टूना ने चप्पलों की जगह बदली। टूना के पतले पाँव में चप्पल की नीली बद्दियाँ बहुत बड़ी लग रही थीं। कुछ देर तक हम उसके पाँवों को देखते रहे। और मन ही मन अपने पाँव चप्पल में होने की कल्पना करते रहे।

"अब चल भी कि खड़ा ही रहेगा।" लिपू ने कहा।

"गिर पड़ा तो।" टूना ने कुछ शरमाते हुए कहा।

"अरे, तू चल तो।" लिपू झुँझला उठा।

अखबार लिपू को थमाते हुए टूना ने अपनी दोनों बाँहें फैलाईं और दायाँ पाँव उठाया।

टूना के पाँव से चप्पल पट्टी के सहारे लटकी हुई थी। टूना पाँव उठाता गया। दायाँ पाँव बाएँ से दो फुट आगे। फिर बायाँ दाएँ से दो फुट आगे। टूना ऐसे कदम उठा रहा था, जैसे मैदान में बारूद बिछी हो। हम सब टूना को हैरत से देख रहे थे। कोई दूर खड़ा व्यक्ति देखता तो उसे लगता कि टूना नाच रहा है।

टूना ने अभी जोखिम भरे सात-आठ कदम ही लिए होंगे कि ताबड़तोड़ पानी बरसने लगा। टूना ने अपने पैरों से चप्पलें निकालीं और गंजी के नीचे दबाकर घर की तरफ भागा। हम सब भी अपने-अपने घरों की तरफ लपके। इस भगदड़ में लिपू के हाथ से अखबार कब छूटा पता ही नहीं चला। बरसते पानी में अखबार ज़मीन से जा चिपका था।

यहाँ चार समीकरण दिए हैं। लेकिन संख्याएँ कुछ गलत लग लग गई हैं। क्या तुम इन्हें ठीक कर सकते हो?

$1 - 2 = 3$

$+$

$4 \div 5 = 6$

$\|$

$7 + 8 = 9$

अनवर

प्रभात

चित्रः ऋषि साहनी

"माटसाब छुट्टी दे दो।" बच्चे ने दोनों हाथों को मलते हुए, हाथ जोड़ते हुए कहा।

"छुट्टी क्यों चाहिए अनवर तुझे।" मास्टरजी ने मसखरी करते हुए पूछा।

"माटसाबजी बकरी के बच्चे हुए हैं। घर पर कोई है नहीं। सूनी छोड़ेंगे तो बकरी के बच्चों को कुत्ते खा जाएँगे माटसाब जी, इसलिए छुट्टी दे दो।"

"गफूर नहीं है घर पर?"

"है, लेकिन घर पर टिकते नहीं साबजी।"

"और तेरी अम्मा?"

"अम्मा ने ही कही है माटसाबजी कि अनवर छुट्टी ले के आ जाना, नहीं तो अपनी बकरी के बच्चों को कुत्ते खा जाएँगे। हमको छुट्टी की कोई शौक थोड़ी आती है साब जी। काम है इसलिए तो आपसे कह रहे हैं। तो मैं जाऊँ?"

"तू जा।" मास्टरजी ने कहा।

"साब मैं भी जाऊँ?" रामकेश ने कहा।

"तू क्यों?" मास्टरजी ने पूछा।

"हमारे बैल के बच्चे हुए हैं साब।" रामकेश ने कहा तो सारे बच्चे हँसने लगे।

रामकेश ने बच्चों को झिड़कते हुए कहा, "तुमको मालूम नहीं है, मेरे और मास्टरजी के बीच बात चल रही है। क्यों बिना बात दाँत निकाल रहे हो।"

"ये सही बात पर हँस रहे हैं बेटा। तू बैठ जा।" मास्टर रामविलासजी ने कहा और मन्द-मन्द मुस्काने लगे।

रामकेश बेमन से बैठते हुए सोच रहा था, "अनवर ने कही थी जैसे मैं छुट्टी माँगू, ऐसे ही तू भी माँग लेना। मगर तू बकरी की जगह कुछ और नाम ले लेना। फिर हम दोनों बकरी के बच्चों के साथ खेलेंगे।"

रामकेश कुछ देर चुपचाप बैठा रहा। फिर हाथ मलते हुए, हाथ जोड़कर बोला, "हमको छुट्टी की कोई शौक थोड़ी आती है साबजी। काम है इसलिए तो आपसे कह रहे हैं। तो मैं जाऊँ?"

"शान्ती के साथ बैठ कर काम कर बेटा। छुट्टी नहीं मिलेगी।" रामविलासजी ने कहा।

रामकेश ने अपना टाट उठाया, शान्ती के पास जाकर टाट बिछा लिया।

उसके मन में बहुत अशान्ति थी वह सोच रहा था, "अनवर घर पर कितने मज़े कर रहा होगा।"

पुरानी जीप

जी.एम. श्रीदेवी
अनुवादः निधि गौड़
चित्रः भार्गव कुलकर्णी

हमारे ऑफिस के पधि जी खुशी से दौड़ते हुए आए। समिति ने हमारी 20 साल पुरानी जीप 3582 की नीलामी की अनुमति दे दी है। हम सभी बड़े लोग बहुत खुश थे। चलो, अच्छा है ये चली जाएगी तो अकादमिक ब्लॉक थोड़ा साफ दिखेगा।

ये चार सीटर जीप कभी हमारे स्कूल की शान थी। इसने कितने बच्चों को बिना थके हॉस्टल से बाज़ार और आसपास के स्कूलों और दो प्लेटफॉर्मों वाले इस छोटे-से रेलवे स्टेशन पहुँचाया होगा।

उड़ीसा के कोरापुट ज़िले के दूर के गाँव में हमारा स्कूल था। ये भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के तहत खुला था। जीप काले रंग की थी। बच्चे प्यार से उसे ऐरावत (इन्द्र का सफेद हाथी) बुलाते थे। गाँव वाले इतनी हैरानी से जीप को देखते जैसे आज हम किसी छोटे शहर में हर्ले को देखते हैं। उस पर भारत सरकार लिखा रहता इसलिए किसी को भी उसे रोकने की हिम्मत न होती।

जीप चालक अबु हर दशहरे को बच्चों की टोली के साथ ऐरावत को धोकर गेंदों के फूलों की मालाओं और हरे-हरे केले के नन्हे पौधों से सजा देता। गाँव के पण्डित ऐसी भाषा में पूजा करते जिसे कोई समझ नहीं पाता। शायद भगवान समझ लेते होंगे! इसके

बाद नारियल फोड़ा जाता और प्रसाद बँटता। प्रसाद फलों के टुकड़ों और मिठाई को मिलाकर बनता। सभी खुद को दुर्घटना से बचाने के लिए पूरे विश्वास के साथ प्रसाद खाते। एक तरह से किसी दुर्घटना से बचने के लिए यह एक सुरक्षा कवच था।

हर साल उसके जन्मदिन को बकरे के मांस और चावल की बड़ी दावत के साथ मनाया जाता। किसी न किसी बच्चे के माता-पिता इसका इन्तज़ाम करवाते। अबु स्कूल और गाँव का सबसे खास व्यक्ति बन गया था। उसके सिवा, कोई भी उस मुश्किल पहाड़ी रास्ते पर गाड़ी नहीं चला पाता था। कई बार बच्चे और टीचर भी अपनी छुट्टी पर प्रिंसिपल की मंजूरी लेने के लिए उससे सिफारिश लगवाते।

15 साल कहाँ फुर्र हो गए, किसी को पता न चला। आंचलिक परिवहन ऑफिस ने जीप को सड़क पर उतारने के लिए प्रमाणपत्र देने से मना कर दिया। उसी समय स्कूल के पुराने छात्र ने 6 सीटों की मारुति वैन गिफ्ट कर दी। अब एक पिटे हुए हीरो की तरह ऐरावत को उसके खास गैराज से खींचकर अशोक के पेड़ के नीचे खड़ा कर दिया गया। ये मेरे कमरे के पास था। इस बूढ़े के पास न तो कोई पेंशन थी और न लापरवाह बच्चों की रहमतें। कोई इस पर अटी धूल न झाड़ता। धीरे-धीरे इसके अन्दर का सामान, सीट कवर सब तेज़ धूप और बेरहम बारिश का सामना करते ढहने लगे। हर दिन इसका कुछ न कुछ सामान उतर आता। कभी उसका सुन्दर हॉर्न, लटकते रिबन जो कोई टीचर सिक्किम से ले आए थे। और एक नन्हे गणेश डैशबोर्ड पर बैठे रहते। ऑफिस से कई बार इसकी नीलामी के लिए खत गए। पुराना स्टॉफ ऐरावत पर हुई मज़ेदार यात्राओं को याद करने लगा। उस दिन को जब जँगली भालू से किसी तरह मरते-मरते बचे थे। भालू तो उस दिन जीप पर सवार हो जाने पर आमादा था। अबु की ड्राइविंग ने उस दिन बचाया।

हम ऐरावत की नीलामी का इन्तज़ार करने लगे। सुनते कि कबाड़ में उसका लोहा बिकेगा। किसी दिन उसका इंजन निकाल लिया गया। अब बस वह जंगदार लोहे का शरीर थी। उसकी छत का कैनवास जा चुका था। एक स्टीयरिंग व्हील और चार पिचके टायर थे। अस्थि-पंजर दिखने लगे थे।

इस बीच हमने देखा कि सभी बच्चों के पास ऐरावत के लिए एक खास जगह थी। कोई इस बेछत जीप पर अखबार पढ़ता था। कोई छोटा बच्चा इसके स्टीयरिंग व्हील के पीछे बैठ कर इसे चलाने की कल्पना करता। दसवीं के बच्चे इसके बोनट का लॉकर की तरह इस्तेमाल करते। कोई उसमें जूते रखता, कोई दस्ताने रख देता।

अब ये पुरानी दादा जीप रिजेक्ट हो गई थी। बाज़ार में इसकी कोई कीमत न थी। लेकिन इसके पोते-पोतियाँ इस पर खुशी के पल बाँटते। कोई भी उनको डाँटने वाला नहीं था। किसी दिन हम भी अपनी ज़रूरत खो देंगे। और घर के मुखिया की भूमिका से बदल कर हम घर की ज़िम्मेदारी बन जाएँगे। लेकिन इस दुनिया में आशाओं के दरीचे भी हैं।

टीचर्स को मीटिंग में लगा कि ऐरावत को रखना चाहिए। इससे पैसे तो कुछ खास मिलेंगे नहीं ऊपर से बच्चों का एक अनमोल साथी छिन जाएगा। और यह अब हमारी कितनी ही यादों का संग्रहालय भी तो है। सिर्फ पधि साहब को ही यह अखर गया। उनका काफी समय इसे नीलाम करने की अनुमति लेने की लिखत-पढ़त में गुज़र चुका था।

हरसिमरन कौर
चित्रः भार्गव कुलकर्णी

"तुमने इस दरवाज़े से बाहर कदम रखा तो देख लेना, मेरी जायदाद से तुम्हें एक फूटी कौड़ी नहीं मिलेगी!"

इस पुराने डॉयलाग में यह जो कौड़ी है वह समुद्र में रहने वाले छोटे-बड़े घोंघे के खोल यानी 'शैल' हैं। कौड़ी 'कौर' शब्द से उपजा है। और 'कौर' संस्कृत के 'करपद' शब्द से आया है। करपद का अर्थ 'बालों का कुण्डल' भी होता है, जैसा भगवान शिव का है। शायद इसलिए भी कि बालों का कुण्डल कौड़ी या शंख के आकार का ही होता है।

कौड़ी की खूबसूरती सदियों से लोगों को भाती चली आ रही है। कभी इसे बहुत कीमती माना जाता था। इसके आभूषण बनते थे तो कभी इसे वस्तुओं में जड़ा जाता था। कौड़ी का उपयोग मुद्रा यानी करेंसी

के रूप में भी होता था।

सिन्धु घाटी सभ्यता में भी कौड़ियाँ मौजूद थीं। हम यह तो नहीं कह सकते कि तब इनका उपयोग मुद्रा के रूप में होता था कि नहीं। लेकिन इसका ज़िक्र विदेशी यात्रियों के किस्सों में मिलता है।

कौड़ियाँ वैसे तो कई तरह की होती हैं लेकिन जिनकी हम बात कर रहे हैं उनका पूरा वैज्ञानिक नाम 'साईप्रे मोनिटा' है। इस नाम में भी 'मनी' शब्द है। चीनी भाषा में पैसे या धन के लिए जो शब्द है वह कौड़ी की तरह दिखता है।

'साईप्रे मोनिटा' कौड़ी मालदीव द्वीपसमूह के आसपास पाई जाती थी। यहाँ कौड़ी संग्रह और व्यापार बड़ा उद्योग बन गया। नारियल की टहनियाँ पानी में छोड़ दी जातीं। उन पर समुद्री घोंघे आकर चिपक जाते। फिर इन्हें पानी से निकालकर धूप में छोड़ दिया जाता था। धूप में घोंघे खत्म हो जाते और बची कौड़ियों को धोकर इस्तेमाल कर लिया जाता। लगभग चौथी सदी के बाद से यह उद्योग इतना बढ़ा कि आज मालदीव के केन्द्रीय बैंक के नाम में कौड़ी का चित्र है।

मालदीव से कौड़ियाँ भारत के बंगाल में भेजी जाती थीं। चौथी सदी के बंगाल में सिक्कों की कमी के कारण लोगों ने कौड़ी को मुद्रा के रूप में इस्तेमाल करना शुरू कर दिया। सुन्दर, छोटी, हलकी, टिकाऊ और पर्याप्त मात्रा में मिल जाने के कारण मुद्रा के लिए यह एकदम सही चीज़ साबित हुई। ज़्यादातर एक जैसी दिखती थीं। बड़ी राशियों का भुगतान करने के लिए इन्हें थैलों या टोकरियों में वज़न के हिसाब से भी तौला जा सकता था। ताम्बे की तरह यह हाथों को गन्दा भी नहीं करती थी। और तो और इसके अनोखे आकार की वजह से इसकी नकल करके जाली मुद्रा बनाना भी लगभग नामुमकिन था। हालाँकि बाद में चीनियों ने इसकी नकल कर दूसरे पदार्थों से इसे बना लिया! तो मालदीव से जहाज़ भर कौड़ियाँ आतीं और बदले में बंगाल से जहाज़ भर चावल मालदीव जाता।

दसवीं से बारहवीं सदी के बीच यह ओडिशा, बिहार और असम में भी इस्तेमाल होने लग गई थी। व्यापार में सोने, चाँदी और ताँबे के सिक्कों के बीच कौड़ी ने भी जगह बना ली थी। पहले सोने के सिक्के अधिक मूल्य के लेन-देन में इस्तेमाल होते थे और चाँदी के कम मूल्य के लेन-देन में। जब चाँदी के सिक्कों की कमी पड़ी तो दैनिक जीवन के लगभग सभी पहलुओं में कौड़ी ने उनकी जगह ले ली। बंगाल में तो सरकार टैक्स भी कौड़ियों में ही लेती थी। और लोग सरकारी जुर्माने भी कौड़ियों में ही भरते थे। एक फ्राँसीसी के लिखित हिसाब से बंगाल में कौड़ियों का इतना उपयोग था कि राजा और ज़मींदार सिर्फ इन्हें रखने के लिए बड़े-बड़े घर बनवाते थे और इन्हें खज़ाने की तरह सँभाल कर रखते थे।

चौदहवीं सदी के बाद बंगाल के सुलतानों ने चाँदी का आयात कर फिर से चाँदी के सिक्के जारी किए। तब भी सरकारी राजस्व में कौड़ियाँ ही चलती रहीं। अठारहवीं सदी में जब अँग्रेज़ आए तो कम से कम बंगाल में तो उनको भी शुरू में कौड़ी को अपनाना पड़ा। वह राजाओं से टैक्स कौड़ियों में लेते

थे और मसाले भी कौड़ियों में ही खरीदते थे।

उन्नीसवीं सदी के कुछ वर्षों के बाद ही अँग्रेज़ों ने कौड़ियों की देसी मुद्रा पर रोक लगा दी। इसके पीछे एक कारण यह भी था कि सोने या चाँदी की तरह कौड़ी का अपना कोई मूल्य नहीं होता था। और इसके लिए मालदीव पर निर्भर होना पड़ता था। अँग्रेज़ों ने इसके बदले ताँबे के सिक्के जारी किए।

कौड़ी को विश्व की सबसे पहली वैश्विक मुद्रा का रुतबा हासिल है। दुनिया के कई इलाकों में इसका प्रचलन हुआ। कौड़ी की कीमत चढ़ती या गिरती रहती थी। 1727 में एक रुपए के बदले 2500-3000 कौड़ियाँ मिलती थीं। 1780 में 5120, 1833 में 6500 और अँग्रेज़ों ने इसको बेचलन कर देना चाहा तो एक रुपए में 9000-10000 कौड़ियाँ मिलने लगीं।

एक बार इब्न बतूता मालदीव छोड़ कर बंगाल जाने वाले थे। उन्होंने कुछ सोने के ज़ेवर बेच कर कौड़ियाँ खरीदीं। वे एक जहाज़ किराए पर लेना चाहते थे। पर वे ज़ेवर मालदीव के एक मंत्री ने उन्हें दिए थे जो अपनी बेटी की शादी इब्न बतूता से कराना चाहता था। जब उसे बतूता के इरादे का पता चला तो उसने बतूता से ज़ेवर वापस माँगे। बतूता ने बताया कि अब तो उनके पास सिर्फ कौड़ियाँ बची हैं जिसे वे चाहें तो ले सकते हैं। मंत्री ने कहा कि उसने तो सोना दिया था और सोना ही उसे वापस चाहिए। इब्न बतूता ने सोना वापस खरीदने की कोशिश की पर मंत्री के डर से व्यापारियों ने ज़ेवर वापस देने से मना कर दिया। आखिरकार बतूता को मालदीव में कुछ और समय रहकर मंत्री की बेटी से शादी करनी ही पड़ी।

इब्न बतूता को पता चला कि कौड़ी क्या चीज़ है। और फूटी कौड़ी? फूटी कौड़ी टूटी कौड़ी को कहते थे। कहते हैं कि तीन फूटी कौड़ियाँ एक साबुत कौड़ी के बराबर दाम की होती थीं। किसी को कहते सुनें कि "आज मेरे पास फूटी कौड़ी नहीं है!" तो इस बात पर भी गौर करिएगा कि यह कहावत कितनी पुरानी होगी और न जाने अभी इसकी कितनी उमर बची है।

लोमड़ी और भेड़िया

लेव तोल्सतॉय

चित्रः भार्गव कुलकर्णी

किसी लोमड़ी ने एक भेड़िए को अपने दाँत तेज़ करते देखा। लोमड़ी बोली, "तू किसलिए दाँत तेज़ कर रहा है? लड़ने को तो कोई सामने है ही नहीं।"

भेड़िए ने जवाब दिया, "जब तक लड़ने को कोई नहीं है, तब तक ही मैं अपने दाँत तेज़ कर सकता हूँ। लड़ने का वक्त आने पर दाँत तेज़ करने की फुरसत ही कहाँ होगी।"

राजेन्द्र धोड़पकर

एक बुंदेली ग़ज़ल

महेश कटारे सुगम

पत्तन बीच चिरैया गा रई
चील डार पै मूसा खा रई

एक गिलैरी पूँछ उठा कें
नेचें आ रई ऊपर जा रई

जाल बुनौ मकरी ने चौड़ौ
कीरा फँसा फँसा कें खा रई

आ रऔ है इक विकट अंधूरा
सँभर जाओ कोयल चिल्या रई

लाल छिपकली घात लगा कें
उजयारे कौ लाभ उठा रई

सुगम देख आफत की बेरा
बिरखा छोड़ बंदरिया जा रई

आबाद पेड़

कृष्ण कुमार
चित्रः भार्गव कुलकर्णी

चित्रकला और कविता में कई समानताएँ हैं। चित्र अपने भीतर दृष्टि के कई स्तर और पहलू लिए रहता है; खासतौर पर यदि वह हाथ से बनाया गया हो। उधर कविता भी ऐसी-ऐसी परतें उजागर करती है कि उन्हें देखकर एक परिचित दृश्य भी नया और कई बार अनोखा लगता है। दोनों कलाओं में मुख्य अन्तर यही है कि चित्रकार के पास सिर्फ रंग और चौखटे व

रेखाओं जैसे साधन हैं, जबकि कवि शब्दों से काम लेता है जिनके भीतर लय और ध्वनि जैसे बारीक साधन निवास करते हैं। कविता हमारे मन में जो चित्र बनाती है, उसे आम तौर पर बिम्ब कहते हैं। कई बार एक बिम्ब के अन्दर कई बिम्ब नज़र आते हैं और उनमें अपनी-अपनी स्वतंत्र गति महसूस होती है। महेश कटारे सुगम की 'चिरैया' शीर्षक कविता एक वृक्ष का चित्र बनाती है, पर वृक्ष के भीतर इतना कुछ चल रहा होता है कि उसे देखते-देखते वृक्ष गायब हो जाता है।

इस स्तम्भ में अभी तक जिन कविताओं की चर्चा की गई है, उनमें से ज़्यादातर काफी पुरानी हैं। 'चिरैया' एकदम नई कविता है और 'साइकिल' के अक्टूबर-नवम्बर 2020 अंक में प्रकाशित हुई है। ताज़ी होते हुए भी यह कविता नई और पुरानी शैलियों का मेल दिखाती है। अन्त के करीब कवि का नाम आना पुराने मिजाज़ का संकेत है, पर बिम्ब-व्यवस्था की जटिलता नई किस्म का स्वभाव लिए है। कविता बुन्देली में है। बुन्देली में क्रिया रूप कोमल और लचीली लय पैदा करने में विशेष रूप से सक्षम रहता है। नासिक आवाज़ें भी सुलभ हो जाती हैं। गिलहरी के ऊपर-नीचे आने-जाने के विवरण में हम ये गुण देख सकते हैं। लेकिन इस पंक्ति को अलग निकालकर देखना ठीक नहीं होगा। पेड़ के भीतर पूरी ताकत और व्यस्तता का दृश्य इकट्ठा देखने की कोशिश करें तो लगता है, हम एक रंगमंच के सामने बैठे हैं। चील, गिलहरी, कोयल, गिरदौला अपने-अपने दैनिक उद्यम में इतने जोश से लगे हैं कि बन्दरिया अन्तिम पंक्ति में कुछ घबराहट लिए पेड़ छोड़ती हुई नज़र आती है। वैसे तो सब कुछ सामान्य है, पर कविता के बीच आते-आते हमें भी कोयल जैसी व्यग्रता और किसी मुसीबत का अहसास होता है। जिस विकट अँधेरे में सँभलने की ज़रूरत कोयल के चिल्लाने में सुनाई देती है, वह कुछ-कुछ बुन्देली के 'चिल्लाने' की वजह से भी है। जिस अँधेरे को कोयल का स्वर फाड़ रहा है, उसके बीच लाल छिपकली-गिरगिट-उजाले का फायदा उठाती बताई गई है।

धूप-छाँह का यह खेल किसी पेड़ में ही सम्भव है। कविता बिलकुल शुरू से पेड़ की समग्रता तोड़ने में लग जाती है और बारह पंक्तियों में सजीव आबादी की विविधता का जायज़ा लेकर पेड़ को दोबारा रचती है। जिस वृक्ष को छोड़कर बन्दरिया जा रही है, वह अब हमें फिर से समूचा दिखता है, पर अब हमें पता है कि उसके अन्दर क्या कुछ चल रहा है। यहाँ पर्यावरण या प्रकृति की रक्षा की नारेबाज़ी नहीं है; कविता का विहंगम जगत है जिसमें एक खास पेड़ रहता है -हर अन्य पेड़ की तरह।

मधुमक्खी द जीनियस

मनमीत नारंग
चित्रः तापोशी घोषाल

छात्र तो दिखते हैं
पर स्कूल कहाँ है?
छत्ता तो दिखता है
पर स्केल कहाँ है?

चलो 10/10 का हेक्सागॉन बनाओ
क्या ऐसे गणित सीखती होंगी?
या भूँ भूँ की कोडेड भाषा में
सारे डब्बे एक समान बना लेती होंगी?

ओ मधुमक्खी!
तुझे शत शत प्रणाम
क्या कहने तुम्हारे
आर्यभट्ट की औलाद!

नीम हकीम

इरशाद कामिल
चित्रः एलन शॉ

नीम हकीम था
कर देता था ठीक फुंसी-फोड़ा
चोट पर लगा देती थी माँ
पत्तियाँ घिस कर थोड़ा

रात को नीम के नीचे सोते
तो पंखा झुलाता
सुबह दातुन बन जाता

मई जून के महीने में
निम्बोलियाँ लाता
माँ शरबत में घोंट कर पिलाती
ना पियो तो डाँट पिलवाता

बहन नीम से बाल धोती थी
आँखों में कड़वा पानी जाए तो
छम-छम रोती थी

उसके बालों में नीम से निखार था
मेरे पड़ोस में था
मेरा यार था
जैसे हरजीत, निसार या भीम था
नीम हकीम था।

कैंची में तुम गीतकार इरशाद कामिल की खास साइकिल के लिए लिखी, खास तुम्हारे लिए लिखी रचनाएँ पढ़ोगे।

जसिन्ता की डायरी - २

जसिन्ता केरकट्टा
चित्रः प्रिया कुरियन

झारखण्ड के पश्चिमी सिंहभूम ज़िले के आनन्दुनपुर ब्लॉक का एक गाँव है सारंगा। तीन दिन हुए यहाँ आए हुए। पहाड़ों से घिरा गाँव है। मेरी बड़ी माँ और मौसी यहीं रहती हैं। बचपन इन पहाड़ों पर चढ़ते-उतरते बीता है। तब रास्ते बहुत पथरीले होते थे। पक्की सड़क कई सालों बाद अभी पिछले साल ही बनी है। पहाड़ों और जंगलों के भीतर और भी बहुत से गाँव हैं। जैसे ठियाटाँगर, सिदुवा, मकड़कोचा, चोड़ारप्पा, सैडल, रूंगी, बान्दूनासा, झारबेड़ा। और बहुत से गाँव ऐसे कि जहाँ तक कोई सड़क नहीं पहुँचती जैसे, बुनम दा, चट्टान पानी गाँव। वहाँ सिर्फ पगडंडियाँ जाती हैं। इतने वर्षों तक यहाँ कच्चे-पथरीले रास्ते थे, जिसे लोगों ने पैदल चलते हुए बनाया था। ये ऊबड़-खाबड़ रास्ते साइकिल-गाड़ी किसी भी तरह के वाहन के चलने के लिए नहीं थे। लोग हर काम के लिए पैदल ही जंगल-पहाड़ों को पार कर ब्लॉक या मनोहरपुर के मुख्य बाज़ार जाते थे। बचपन में हम पहाड़ों को पार कर

सारंगा गाँव आते थे। पहाड़ के उस पार मेरे बाबा का गाँव है-बाँधटोली (खुदपोस)। और इस पार मेरी बड़ी माँ और मौसी का गाँव है सारंगा। पहाड़ पार कर पहुँचने में दो-तीन घण्टे लग जाते हैं। बाबा का गाँव कोइल नदी के किनारे बसा है। आठ-दस परिवारों का एक गाँव। एक गाँव में आबादी बढ़ने पर मेरे दादा-परदादा जंगल के और भीतर खेती करने लगते। खेत के साथ आम, जामुन, इमली जैसे फलदार पेड़ लगाए। तालाब बनवाए। आज भी पेड़ और तालाब उनकी निशानी बने हुए हैं। कुछ ही दूरी पर कोइल नदी बहती है। ठीक हमारे गाँव के पास नदी दो धारा में बँट गई है। बीच में टापू-सा बन गया है। लोग उसे जमुना डिपा कहते हैं। बचपन में हम सुनते थे कि जमुना डिपा के नीचे चरका कोहड़ा (सफेद कोहड़ा) मिलता है। विदेश में उसकी माँग है। कीमत भी बहुत है। लोग उसे ढूँढते हुए आधी रात को जमुना डीपा जाते थे। नदी में ज़रा भी हलचल देख या आवाज़ सुन डरते हुए गाँव भाग आते। और नदी किनारे चुरीन (भूत) के रात भर घूमने और पानी में कूदने की बातें सबको सुनाते।

मनोहरपुर में रेलवे स्टेशन है। यह झारखण्ड और ओड़िशा की सीमा पर है। इसलिए हर ट्रेन यहाँ रुकती है। गाँव के पास वाली टुँगरी (छोटी पहाड़ी) से गुज़रती ट्रेन दिखाई देती है। दूर से वह खिलौने की तरह दिखती है। जैसे, माचिस की छोटी-छोटी डिब्बियों से बनी हो और जिसके भीतर रोशनी हो। जैसे, कोई जुगनू बैठा हो हर डिब्बे में। और सब एक दिशा में भाग रहे हों। यह देखने हम कभी रात में टुँगरी चढ़ते। कभी कोइल नदी के किनारे चाँदनी रात में बैठे रहते। झिलमिल पानी को देखते। कभी नदी में चाँद की परछाई ढूँढते। नदी के पास ऊँची चट्टानों के बीच पानी जमा हो गया था। लोग उसे दाह कहते थे। लेकिन मगरमच्छ होने के कारण उसे मंगरदाह कहने लगे थे। लेकिन हम बच्चे किसी की सुनते कहाँ थे? हम चट्टान पर चढ़कर मंगरदाह में छलांग लगाते। बहुत दिनों बाद लगा कि शायद बच्चों को डराने के लिए उसे मंगरदाह कहते थे। मगरमच्छ तो हमें कभी भी नहीं दिखा।

अब भी वही नदी है, वही टुँगरी है, रात में दिखते रेल के डिब्बे हैं। हाँ मंगरदाह गायब हो गया है। बालू जमा होने के कारण अब दाह उतना गहरा नहीं है। अब भी बच्चे दाह में छलांग लगाते हैं। वे घड़घड़िया में तैरते हैं जहाँ पानी की धार तेज़ रहती है। बच्चे वहीं बहते हुए खुद से तैरना सीखते हैं। वे नदी की धार से डरते नहीं हैं। नदी का पानी इतना साफ होता है कि मछलियाँ तक दिखती हैं। बच्चे मछलियों के साथ खेलते हैं। उन्हें हाथ से पकड़ते हैं। बालू में बनाए छोटे गड्ढे में रखते हैं। किसने कितनी मछली पकड़ी यह गिनते हैं। मछलियाँ पत्थरों के पीछे छिपती रहती हैं। लेकिन साफ पानी में सब दिख जाती हैं। वे बहुत छोटी होती हैं इसलिए बच्चे थोड़ी देर बाद उन्हें नदी में छोड़ देते हैं। बच्चों के साथ हम भी खेलते हैं। इतने सालों में ज़्यादा कुछ नहीं बदला है। कुछ नया है तो सिर्फ सड़क नई है। बहुत साल बाद पक्की सड़क गाँव आई है। बिजली भी। पर सड़क और बिजली दोनों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। सड़क आने से

बच्चों का स्कूल जाना और लोगों का शहर जाना आसान हुआ है। सक्षम लोग खूब मोटरसाइकिल खरीद रहे हैं। अब लड़कियाँ साइकिल चलाकर स्कूल जा सकती हैं। पर पैसे की कमी से बहुत सारी लड़कियाँ नहीं पढ़ पाती हैं। कम उम्र में शहर काम करने चली जाती हैं। बहुतों की शादी हो जाती है। सड़क नई है लेकिन लोगों को डर सताता है कि यह सड़क नदी तक बालू माफिया और पहाड़ों तक पत्थर, कोयला खनन करने वाली कम्पनियों को लेकर आती है। जब-तब पुलिस भी गाँव में घुस जाती है। हर आदिवासी गाँव को नई सड़क चाहिए पर यह अलग तरह की परेशानी भी लेकर आती है। इसलिए लोग नई सड़कों को शक की नज़र से देखते हैं।

खेत में धान पक गया है। लोग खलिहान को गोबर से लीप रहे हैं। औरतें धान काट रही हैं। धान ढो रही हैं। बचे समय में बकरियाँ चरा रही हैं। आज मंगर बाज़ार है। यह सबसे पुराना हाट है। हर मंगलवार को लगता है। चारों तरफ के गाँव यहाँ अपना सामान बेचने आते हैं। मेरा बचपन इस हाट में भी घूमते हुए बीता है। सुबह से गाँव की लड़कियाँ अपने घर की मुर्गियाँ पकड़ रही हैं। वे हाट में मुर्गियाँ बेचेंगी। जंगल के भीतर से इतने सारे लोग निकलकर हाट में जुटते हैं। सूरज ढलते-ढलते हाट खाली होने लगता है और पूरी भीड़ फिर से जंगलों के भीतर न जाने कहाँ गायब हो जाती है।

डायरीः 10 नवम्बर 2020 (सारंगा गाँव, पश्चिमी सिंहभूम, झारखंड)

50 25 20 10 5 3 2 1 = 96
इन संख्याओं के बीच कौन-सा चिन्ह लगाएँ कि इनका जोड़ 96 बन जाए?

मुर्गी और अबाबील

लेव तोल्सतॉय
चित्रः भार्गव कुलकर्णी

एक मुर्गी को साँप के अण्डे मिल गए। वह उन्हें सेने लगी। अबाबील ने यह देखा तो बोली, "कैसी बुद्धू है री, तू! तू इन्हें अण्डे से बाहर निकालेगी और ये बड़े होने पर सबसे पहले तुझे ही डसेंगे।"

उत्तर: [50+25+(20-10)+ 5+3+2+1 = 96]

हिमांशु वाजपेई
चित्रः ऋषि साहनी

मुसाफिरों से भरी एक बस अपनी मंज़िल की तरफ चली जा रही थी। अँधेरा होने लगा था। रास्ते में एक जंगल पड़ता था। जंगल में डाकू थे। बसें जंगल से पहले की एक सुरक्षित जगह पर रुक जाया करती थीं। फिर अगली सुबह आगे रवाना होती थीं।

यह बस भी जब सुरक्षित जगह पहुँची तो ड्राइवर ने कहा कि अब हम रात भर यहीं रुकेंगे। उस बस में एक पहलवान था। उसके पास बन्दूक थी। उसे डाकुओं के डर से बस रोकना अपनी तौहीन लगी। उसने ड्राइवर से कहा कि मैं पहलवान हूँ। मेरे पास बन्दूक है। डाकुओं को मैं देख लूँगा। हम बिना रुके घर पहुँच जाएँगे। ड्राइवर ने गाड़ी आगे बढ़ा दी। डाकुओं वाली जगह के करीब पहुँचते-पहुँचते लोगों ने पहलवान की तरफ फिर देखा। पहलवान फिर बोला, "आने तो दो देख लिया जाएगा।" थोड़ी देर बाद बस को डाकुओं ने घेर लिया। पहलवान बोला, "बस में चढ़के दिखाएँ डाकू तब मैं बताता हूँ।" डाकू बस में चढ़ने लगे। पहलवान बोला, "लूटपाट करके तो दिखाएँ मैं उनके छक्के छुड़ा दूँगा।" डाकू लूटपाट करने लगे। लोगों ने हसरत से पहलवान को देखा। पहलवान बोला, "डाकू लूटपाट करके बस से नीचे उतर जाएँ तो कहना।" डाकू नीचे उतरे और लूट का सारा माल लेकर चले गए। अब सबने जलती निगाहों से पहलवान को देखा। तो पहलवान बोला, "बड़े बद्तमीज़ डाकू थे। मेरे गठीले बदन और बन्दूक तक का लिहाज़ नहीं किया। चलो, कोई बात नहीं घर टाइम से पहुँच जाएँगे।"
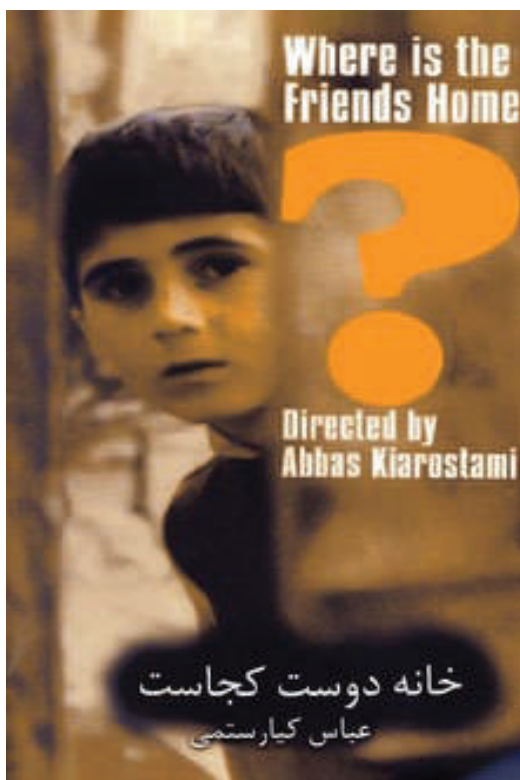
टेढ़ा रास्ता

अमित दत्ता
चित्रः तापोशी घोषाल

ईरान के महान फिल्मकार अब्बास किरोस्तामी की फिल्म 'खाने-ये दुस्त कोज़ास्त' (मेरे दोस्त का घर कहाँ है?) में एक पहाड़ी का शॉट आता है और उस पर बिछा हुआ एक टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता। फिल्म का नायक एक लड़का है जो अपने दोस्त की तलाश में पहले दाएँ फिर बाएँ भागता हुआ सरपट पहाड़ी चढ़ जाता है। जो भी यह फिल्म देखता है उसके दिलो-दिमाग में यह शॉट हमेशा के लिए छप जाता है।

मैंने यह फिल्म पूना के फिल्म संस्थान में अपनी पढ़ाई के दौरान देखी थी। कई सालों बाद मैं अपनी खुद की फिल्म बना रहा था। उसकी पटकथा में भी कुछ ऐसा ही दृश्य सामने आया। इसमें एक पात्र को पहाड़ी चढ़नी थी। मैंने जब वो रास्ता ढूँढा तो मुझे भी पहाड़ी रास्ता कुछ वैसा ही मिला यानी ज़िग-ज़ैग (टेढ़ा-मेढ़ा)।

इस फिल्म के पूरा होने के कुछ साल बाद की

बात है। मैं शिमला के पास एक पहाड़ी चढ़ रहा था। खड़ी चढ़ाई थी और मेरी साँस फूल रही थी। तभी मेरी हालत देख एक पहाड़ी वृद्ध मेरे पास आए और बोले कि आप सीधा मत चढ़ो। पहले बाएँ जाओ फिर दाएँ। ऐसे तुम बिना थके चढ़ जाओगे। और फिर कुछ ऐसा ही हुआ। मैं उनकी इस तकनीक से बिना थके पहाड़ी के ऊपर पहुँच गया। चोटी पर पहुँच कर मुझे अहसास हुआ कि मुझे भी अपने जीवन में अपने लक्ष्य को पाने के लिए (यानी एक फिल्मकार बनने के लिए) कुछ ऐसे ही टेढ़े-मेढ़े रास्ते से ही तो गुज़रना पड़ा है।

क्या हमने नाहक ही टेढ़े रास्ते को बदनाम नहीं कर रखा है?

एक कुमाऊँनी कविता

भूत

चारुचन्द्र पाण्डे
हिन्दी अनुवादः मृणाल पाण्डे
चित्रः राजीव आइप

पारवाले घर में भूत है!
पूछते हो क्या सबूत है?
रहना एक रात वहाँ
भूल जाओगे ये बात वहाँ,
जब देखोगे दो दाँत वहाँ,
थरथर काँपेगा गात वहाँ,
क्या कहा सबूत दूँ?
पहले पिछवाड़े धमधमाट,
फिर घुँघरुओं का छमछमाट
तब उड़ै सुगन्धि, उलटै खाट,
लोग कहें कोई रजपूत है,
पारवाले घर में भूत है!!!

पेड़ों के आकार

आमोद कारखानिस
चित्रः तापोशी घोषाल

पहला चित्र बरगद का है और दूसरा आम का।

बरगद खास फॉर्म के कारण पहचान में आ जाता है। पर तुम आम को कैसे पहचानते हो?

दूर से आम का पेड़ आधी कटी गेंद जैसा दिखता है। वैसे तो बरगद के पेड़ भी कुछ-कुछ ऐसे ही दिखते हैं। पर उनका फैलाव कुछ ज़्यादा होता है। लटकती जड़ें भी बरगद की पहचान बनाती हैं।

पर पेड़ों के खास आकार से हम क्या जान सकते हैं?

पेड़ों को उसकी पत्तियों की जमावट से आकार मिलता है। आमतौर पर पत्तियाँ टहनियों के सिरे पर होती हैं। यहाँ उन्हें अच्छी खासी धूप मिलती है। पत्तियाँ धूप, पानी और हवा से ली कार्बनडाइऑक्साइड से खाना बनाती हैं। धूप अच्छी होगी तो पत्तियाँ अपना काम अच्छे से कर पाएँगी।

क्या आम के पेड़ का गुम्बदनुमा आकार इसमें कोई भूमिका निभाता है?

एक सामान्य-सा तर्क लगाते हैं। सूरज पूरब से घूमता हुआ पश्चिम में डूबता है। पेड़ का वही आकार सबसे अच्छा होगा जिससे पूरे दिन उसके किसी न किसी हिस्से पर सूरज की रोशनी सीधी आती रहे। कटी गेंद का आकार इसके लिए सबसे बेहतर विकल्प है।

इस आकार वाले पेड़ का एक और अच्छा उदाहरण है - रेन ट्री। ये पेड़ मूल भारत का नहीं है पर आजकल शहरों में कई जगह लगाए जाते हैं। इस विशालकाय पेड़ की शाखाएँ सिमेट्री में जमी लगती हैं। नियमित अन्तराल के बाद वे दो शाखाओं में बँटती जाती हैं। इनके तने के पास खड़े होकर ऊपर देखो तो इसका विशाल गुम्बद जैसा आकार दिखेगा। उसकी बाहरी सतह पर छोटी-छोटी पत्तियाँ उसे बेहद खबसूरत बना देती हैं।

पर धूप तो हर पेड़ को चाहिए। फिर हर पेड़ का आकार एक-सा क्यों नहीं होता। सहजन के पेड़ के इस चित्र को बनाते हुए यह ख्याल आया।

सहजन के पेड़ में घने पत्ते नहीं होते। आकार सँकरा अँग्रेज़ी के उल्टे यू जैसा दिखता है।

यहाँ हमें एक और चीज़ के बारे में सोचना पड़ेगा। पत्तियाँ सूरज की रोशनी में पेड़ के लिए खाना बनाने का काम ज़रूर करती हैं। पर साथ ही उन पर बने छोटे-छोटे छेदों से काफी सारा पानी भाप बनकर उड़ जाता है। अगर ज़मीन में नमी की कमी हो तो इन पत्तियों से वाष्पीकरण के कारण, खाने वाले पानी की आपूर्ति करना मुश्किल हो जाता है। सहजन बड़ा जीवट पेड़ है। यह कम पानी वाली बंजर ज़मीन पर भी उग जाता है। दोपहर की तेज़ धूप में इसकी पत्तियाँ ज़्यादा पानी खो सकती हैं। यह केवल सुबह-शाम की ठीक-ठाक रोशनी में भी फलता-फूलता रह सका है। यू आकार इसके लिए बड़ा मुफीद साबित होता है।

क्रिसमस ट्री भी जाना-पहचाना पेड़ है। आमतौर पर यह ठण्डे पहाड़ों पर पाया जाता है। वहाँ जहाँ सर्दियों में खूब बर्फ गिरती है। पेड़ों पर बर्फ जमने लगती है। देर तक जमी बर्फ के भार से शाखें टूट सकती हैं। पर इसकी नुकीली, ढलावदार, झुकी पत्तियों से बर्फ लुढ़ककर नीचे गिरती जाती है। सोचो, अगर यहाँ विशाल लम्बी-लम्बी शाखाओं वाले गुम्बदाकार पेड़ होते तो उनका क्या हाल होता।

यहाँ मैंने कुछ ही पेड़ों के चित्र बनाए हैं। कितने सारे पेड़ हैं जिन्हें हम उनका आकार, फॉर्म देखकर ही पहचानते हैं, जैसे जामुन, पीपल, इमली और अमरूद। इनके चित्र बनाने की जिम्मेदारी अब आप पर छोड़ता हूँ। ज़रूर कोशिश करना। और अपने अनुभव भी साझा करना।

अँधेरा

सुशील शुक्ल
चित्रः तापोशी घोषाल

घुप्प अँधेरी में जागकर रात देखी है? गली में, पेड़ों पर, तुम्हारी साइकिल पर, सब पर एक रात पड़ी रहती है। कभी-कभी अँधेरा इतना होता है कि कुछ नहीं दिखता। जब कुछ न दिखे तब समझ लो कि अँधेरा सचमुच गहरा है। ऐसी रात में पेड़ और साइकिल और गली सब एक हो जाते हैं। पहचानें खो जाती हैं। तब कहीं एक टिटहरी बोलती है। और अँधेरे में एक सुराख कर देती है। हम चुपचाप घर में खड़े रहते हैं। चूहे हमारे ही किचन के किसी पीपे पे कूदते हैं। उस आवाज़ का पीछा करते हम किचन में जा सकते हैं। अँधेरों में सबसे अच्छा रास्ता तो आवाज़ें ही बनाती हैं।

उजाला

उजाले में चीज़ें दिखती हैं। मगर उजाला भी दिखता है। अँधेरे में कुछ दिखता है तो अँधेरा नहीं दिखता। वह आपके देखने के बीच में नहीं आता। तब तो बिलकुल नहीं दिखता जब आप उसे देखना नहीं चाहते। उजाला दिख ही जाता है। उजाले में नींद नहीं आती। नींद भी दिखना नहीं चाहती है। वह बिना दिखे आना चाहती है। इसलिए कितनी बार माँ बोलती थी कि आँख बन्द कर लो, नींद आ जाएगी।...

और दरवाज़े

मेरे घर के सामने एक बड़ा मैदान है। बहुत ही घने पेड़ और चिड़ियों से भरा। दो टिटहरियाँ हैं, सात कुत्ते हैं। वहाँ कम से कम एक साँप तो ज़रूर होगा। कभी दिखे तो उससे कहना चाहता हूँ कि वह दिखा करे। और यह भी कि मुझे उसके न दिखने से ज़्यादा डर लगता है। कीड़े दिखते हैं। घास में घास के पत्तों जैसे। ...जब दरवाज़ा बन्द रहता है तो ये सब एक तरफ रह जाते हैं। इसलिए जब तक घर में रहता हूँ मेरी कोशिश रहती है कि दरवाज़ा खुला रहे। कि ये सारे पेड़, परिन्दे, ये सारा जीवन मेरे दरवाज़े के उस तरफ आकर न ठहरा रहे। मैंने दरवाज़ा बन्द करके बाहर देखा है। पूरा का पूरा दृश्य वहाँ तक आता है। इसलिए मैं हमेशा उसे दरवाज़ा खोलकर अन्दर आ जाने देना चाहता हूँ।

अल-किन्दी

विजय शंकर वर्मा
चित्रः अबीरा बंधोपाध्याय
अनुवादः निधि गौड़

पटना में पला बड़ा। साइंस कॉलेज में भौतिक विज्ञान पढ़ा। मेरे कॉलेज के रास्ते में एक पुरानी पीली-लाल इमारत थी- खुदा बख्श ओरियंटल पब्लिक लाइब्रेरी। मैं सालों तक रोज़ उसके सामने से गुज़रता रहा। पर अन्दर नहीं गया। बहुत दिनों बाद एक दिन मैं पटना छोड़कर दिल्ली चला गया। और एक कॉलेज में पढ़ाने लगा। कई साल बाद गर्मियों की छुट्टियों में पटना आना हुआ। और जाने कैसे एक दिन इस लाइब्रेरी में चला आया।

लाइब्रेरी की किताबों और मुगलकालीन यंत्रों ने हैरान कर दिया। एक से एक दुर्लभ और नायाब किताब। अरबी पाँडुलिपियों में अल-किन्दी की 'अल किताब फी अश शुआत' पर मेरी नज़र ठहर गई। उस पर लिखा था, 'बहुत पुरानी और अनूठी किताब जिसमें सूरज की किरणों पर खलीफा मामुन (813-833 ईस्वीं) और मुस्तासिम (833-841 ईस्वीं) के दरबार के महान दार्शनिक ने विचार किया है।'

मैं किताब के पन्ने पलटने लगा। इतने सटीक चित्र बिना आजकल के उपकरणों से कैसे बने होंगे! मैं अरबी नहीं जानता था। फिर भी मैंने इसकी फोटोकॉपी करवा ली। इस उम्मीद में कि कभी कोई मेरे लिए इसका अनुवाद कर सकेगा।

सालों तक यह फोटोकॉपी मेरी किताबों की अलमारी

में पड़ी रही। कोई मिला नहीं जो अरबी और भौतिकविज्ञान दोनों जानता हो। और इसके अनुवाद में भी दिलचस्पी रखता हो।

कुछ साल पहले जॉर्डन से एक शोध छात्र हातेम विडयन हमारे विभाग में पढ़ने आया। मैंने उसे यह पाण्डुलिपि दिखाई। वो इस किताब को आसानी से पढ़ पा रहा था। 1000 साल पहले लिखी यह किताब मेरे लिए अब एक किताब होने वाली थी। इतने सालों में उसकी अरबी बिलकुल नहीं बदली थी। हातेम उसके ज़्यादातर तकनीकी शब्दों से वाकिफ था। जॉर्डन विश्वविद्यालय में भौतिकविज्ञान में आज भी इन्हें बोला जाता है।

शुरू में अनुवाद तेज़ी से हुआ। कुछ ही महीनों में पहला ड्राफ्ट करीब-करीब तैयार हो गया था। कुछ मुश्किलें ज़रूर आईं। जैसे पाण्डुलिपि में बीच-बीच में कुछ छूटा हुआ था। कुछ शब्दों के अर्थ स्पष्ट नहीं थे। कुछ शब्दों के अँग्रेज़ी में सटीक शब्द नहीं थे।

इस किताब में हमें एक लेख का ज़िक्र मिला। इसमें
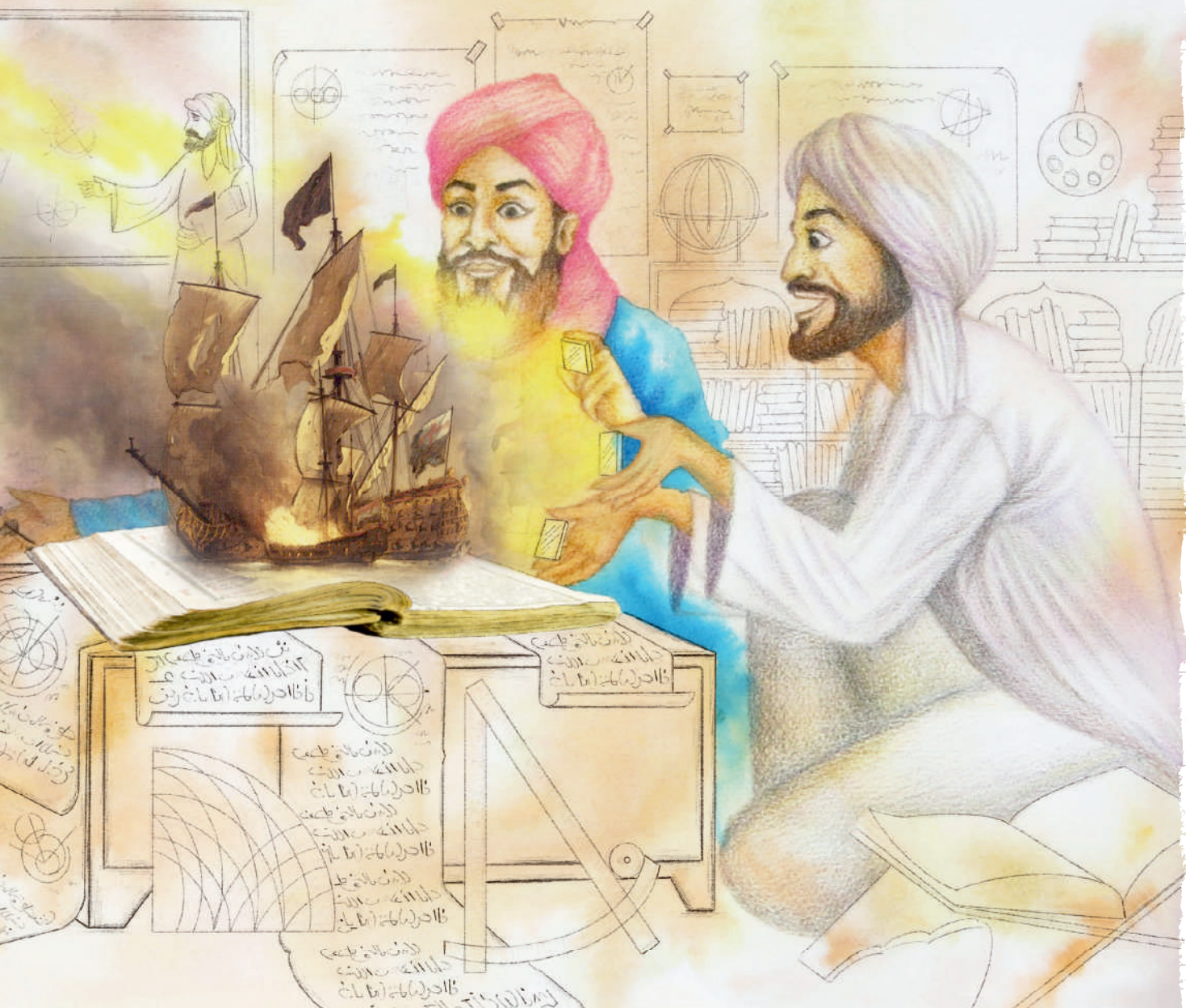
मशहूर यूनानी वैज्ञानिक आर्किमिडीज़ द्वारा रोम की लम्बी नाव जलाने का ब्यौरा था। इन नावों ने सिराक्यूज़ बन्दरगाह पर कब्ज़ा कर लिया था। यह किस्सा 1000 साल पुराना था। अलकिन्दी बताते हैं कि ज़्यामिति के दो सामान्य सिद्धान्तों से यह कैसे सम्भव है। मज़े की बात है कि आज हाई-स्कूल के विज्ञान के सभी विद्यार्थियों को इन सिद्धान्तों की जानकारी है। एक तो यह कि प्रकाश सीधी दिशा में गति करता है। और दूसरा, वह किसी समतल तल से टकराकर परावर्तित हो जाता है। अलकिन्दी लिखते हैं कि सूरज प्रकाश का स्रोत है। और वो हमसे बहुत दूर है। उसकी किरणें जब धरती पर पहुँचती हैं तो एक दूसरे के समानान्तर होती हैं। पर दर्पण से इन्हें एक बिन्दु पर केन्द्रित किया जा सकता है। सिराक्यूज़ में आग भी इसी तरह लगाई होगी। अलकिन्दी सिद्ध कर पाए कि अगर 24 दर्पणों को उचित कोण में रखा जाए तो सूरज की किरणों को एक बिन्दु पर केन्द्रित किया जा सकता है। इन्हीं अल-किन्दी साहब ने कोई 1200 साल पहले सौर भट्टी का नमूना दिया था जो बीसवीं शताब्दी में तैयार हुआ। इससे तापमान इतना ऊँचा किया जा सकता है कि वह धातु तक को पिघला सकता है। हैरानी इस बात की है कि हमें स्कूल-कॉलेज में विज्ञान के इतिहास में पढ़ाया जाता है कि प्रकाश सीधी दिशा में गति करता है और प्रकाश के परावर्तन का सिद्धान्त यूरोपीय वैज्ञानिकों ने सोलहवीं शताब्दी में खोजा था। और देखिए यहाँ हमारे पास एक ऐसी पाण्डुलिपि थी जो नवीं शताब्दी में बगदाद में लिखी गई थी। और जिसमें इन्हीं सिद्धान्तों की मदद से सौर भट्‌टी बनाने का तरीका था।

खैर...इधर अनुवाद करते हुए हम इस बात का भी पता करते जा रहे थे कि इसका अनुवाद पहले कभी हुआ है कि नहीं। और सोचो, हमारा क्या हाल हुआ होगा जब हमें पता चला कि फ्रांस के दो शोधकर्ता इस का फ्रेंच में अनुवाद कर रहे हैं और जो बस छपने ही वाला है। तब तक हमारे अनुवाद का पहला ड्राफ्ट लगभग खत्म हो चुका था। हम इतने मायूस हुए कि हमने इस काम को छोड़ ही दिया। यह 1990 के दशक के आखरी सालों की बात है। हातेम की पीएचडी खत्म हो चुकी थी। वो अल अल-बायत विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान का प्रोफेसर बन गया था।

कई साल बाद मुझे इंडियन इंस्टिट्‌यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज़, शिमला की फैलोशिप मिली। वहाँ मुझे अपनी गलती का अहसास हुआ। मुझे उस अनुवाद को अधूरा नहीं छोड़ना था। फ्रेंच की यह किताब भारतीयों के लिए अब भी दुर्लभ ही थी। भाषा और दाम दोनों की वजह से। तो हमने अनुवाद का काम फिर शुरू किया। इंटरनेट की मदद से हातेम और मैं इस अधूरे काम को पूरा कर पाए। और इंस्टीट्‌यूट इसे छापने को राज़ी हो गया।

इसी दौरान हमें पता चला कि इस किताब के हम जैसे मुरीद और भी है। अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के एक भौतिकशास्त्री ने जर्मन में इसका अनुवाद करने की कोशिश की। बात दशक 1930 के आखिरी सालों की है। वो इसे अपने साथ जर्मनी ले गए थे। वहाँ वो पीएचडी कर रहे थे। लेकिन दूसरे विश्व युद्ध के चलते काम पूरा न हो सका। ये अनुवाद अब खो चुका है।

अब अल-किन्दी के बारे में कुछ बताता हूँ।

अल-किन्दी बगदाद में पले-बढ़े। उस समय बगदाद खलीफा भाइयों, मामुन और अल-मातासिम, के राज

में फल-फूल रहा था। इसकी सरहदें उत्तर में द बोसफोरस से दक्षिण में अरब सागर तक फैली थीं। और पश्चिम के आँडूलिसिया से पूरब में पर्शिया तक फैली थीं। अल-किन्दी गणितज्ञ, वैज्ञानिक, दार्शनिक थे। भौतिकशास्त्री थे। उन्होंने संगीत, धातु-विज्ञान और अन्तरिक्ष विज्ञान पर कई शोध पत्र लिखे। उन्होंने दुनियाभर की महत्वपूर्ण किताबों का अरबी में अनुवाद किया। इसके चलते अरबी शोधक ज्ञान के संसार में अपने समय के शोधकों से आगे रहे। अलग-अलग संस्कृतियों के अरबी अनुवाद कई शताब्दियों बाद यूरोप पहुँचे। वहाँ इनका लातिन में अनुवाद हुआ। इससे पुनर्जागरण को ईंधन मिला।

इतने महत्वपूर्ण काम के चलते अल-किन्दी 'अरब के दार्शनिक' नाम से मशहूर हुए।

अल-किन्दी की 'अल किताब फी अश शुआत' की पाण्डुलिपि का 22 नम्बर का पन्ना।
(साभार- खुदाबख्श ओरियंटल पब्लिक लायब्रेरी)
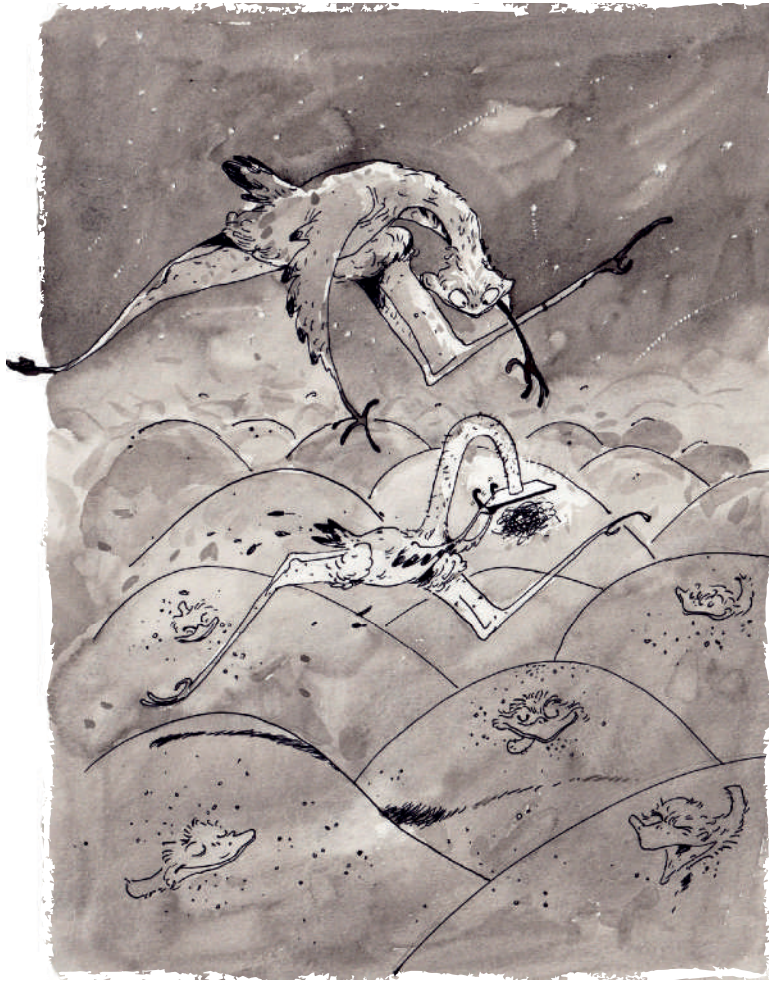
शुतुरमुर्ग

मिलोश मात्सोउरेक
अनुवादः असद ज़ैदी
चित्रः ऋषि साहनी

शुतुरमुर्ग की टाँगें निहायत लम्बी होती हैं। वह जब भी मुसीबत को आते देखता है बड़े-बड़े डग भरता हुआ भाग लेता है। शुतुरमुर्ग तेज़ दौड़ सकता है, सचमुच बहुत तेज़, पर बाज़ दफा बदनसीबी की टाँगें शुतुरमुर्ग की टाँगों से भी लम्बी होती हैं। बदनसीबियाँ भी कई किस्म की होती हैं। कुछ की टाँगें छोटी और भारी भरकम होती हैं और कुछ की पतली और लम्बी। इस बाद वाली श्रेणी से शुतुरमुर्ग भी नहीं बच सकता।

जब शुतुरमुर्ग पाता है कि पीछा करती अपनी बदनसीबी से वह जीत नहीं पाएगा तो वह जल्दी से इधर-उधर नज़र दौड़ाता है और जहाँ भी रेत का ढेर दिखाई देता है वहाँ पहुँचकर उसमें अपना सिर गड़ा देता है। पर इस दुनिया में बहुत रेत है। चारों तरफ रेत ही रेत है। इतनी रेत है जितनी कि रेत। इसका एक अफसोसनाक नतीजा यह है कि शुतुरमुर्ग को अकसर याद ही नहीं रह पाता कि किस जगह रेत के किस ढेर में उसने अपना सिर गाड़ा था।

तुम ऐसे शुतुरमुर्ग को आसानी से पहचान सकते हो, क्योंकि वह बिना सिर का इधर-उधर भटकता हुआ, बिना खाए, बिना पिए, बिना सोए, रेत के हर ढेर को पैरों से टटोलता दिखाई देगा। उसकी ये सारी कोशिश बेकार है क्योंकि ज़ाहिर है वह अपनी खोपड़ी का इस्तेमाल नहीं कर रहा।

उधर उसका सिर रेत के अपने ढेर में घुसा हुआ बहुत खुश है, फूला नहीं समा रहा, अपने आप को शाबाशी देता हुआ कि देखो मैंने बदनसीबी को पीछे छोड़ दिया न! मैं जीत गया। मैं ज़्यादा चतुर निकला। ज़्यादा अक्लमन्द निकला। उसे कोई आभास ही नहीं कि बाहर तारों भरे आसमान के नीचे क्या हो रहा है। उसे खबर ही नहीं कि उसका शुतुरमुर्ग बयाबान में भटकता है। अभागा शुतुरमुर्ग जो अपनी बदनसीबी से बच न पाया।

उत्तराखंड की एक लोक कथा

मृणाल पाण्डे
चित्रः राजीव आइप

एक गाँव में एक बड़ा अमीर आदमी रहता था। एक दिन उसके पेट में दर्द था। वह गाँव के वैद्य के पास गया और बोला, "रात से मेरे पेट में दर्द हो रहा है। मुझे दवा चाहिए।"

वैद्य ने पूछा, "कल रात खाने में क्या कुछ ऐसा खा लिया था जिससे पेट में मरोड़ उठती हो?"

अमीर आदमी बोला, "मेरे घर में तो हर रात खाने में तरह-तरह की चीज़ें पकती हैं। लगता है शायद कोई ऐसी रोटी खा ली होगी, जो शायद ठीक से सिंकी नहीं थी। शायद उसी की वजह से मेरा पेट दुख रहा है।"

वैद्य ने उसे एक छोटी-सी शीशी थमा दी और कहा, "जा, इसे दिन में दो बार आँख में डालना।"

"पर महाराज, ये तो आँख की दवा है, जबकि दर्द मेरे पेट में है।"

वैद्य हँस कर बोले, "इससे खाने से पहले तू साफ-साफ देख सकेगा कि खाना कौन किस तरह पका कर तुझे खिला रहा है। और जो रोटी तू बिन सोचे समझे खा रहा है वह कच्ची है कि पक्की?"

नवाब साब

राम करन
चित्रः सौमित्र दासगुप्ता

रमन, राशिद और नसरीन ने हाल ही में एक फिल्म देखी। उसमें नवाबों की बड़ी शान देखी। रमन ने ऐलान कर दिया कि अब हम नवाब-नवाब खेलेंगे। और खेल में नवाब वो ही बनेगा। राशिद बोला, "तुम क्यों नवाब मैं बनूँगा।" देर तक दोनों मैं-मैं करते रहे। नसरीन बोली, "नवाब ज़रूरी तो नहीं कि लड़के ही हों।"

अन्त में तय हुआ कि तीनों बारी-बारी से नवाब बनेंगे। और हाँ, नवाब बनने के लिए उर्दू बोलना आना चाहिए। वो भी सलीके से। ये नहीं कि ज़लील को जलील और जलील को ज़लील करते फिरें। रमन मास्टर दीनानाथ से उर्दू सीख रहा था। उसे मालूम था कि उसकी उर्दू की वजह से मौका उसे ही मिलना चाहिए।

राशिद 'स' को 'श' और 'श' को 'स' बोलता था। इस बात को खासियत मानते हुए उसे ही सबसे पहले नवाब बनाना तय किया गया।

राशिद नवाब साहब के लिए अपना कुर्ता-पाज़ामा ले आया। नसरीन बोली, "कुर्ता तो ठीक है पर पाज़ामा पतली मोहरी का होना चाहिए।" इसलिए उसे बाजू से काटकर सिल दिया गया। नवाब साहब टोपी के बगैर नवाब नहीं लग रहे थे। राशिद ने कागज़ की टोपी बनाई और पहन ली। नवाब को जूतियों की ज़रूरत पेश आने लगी। पर वे ना राशिद के पास थीं ना रमन के। नसरीन अपनी अम्मी की जूतियाँ ले आई।

कुर्ता, पाज़ामा और टोपी पहनकर नवाब साहब तैयार थे। उनके बैठने के लिए एक चौकी बनाई गई। जिस पर गद्दे और गाव-तकिए बिछाए गए। नसरीन ने कहा, नवाब का नाम लम्बा होना चाहिए। सोच विचार

के बाद नवाब का नाम 'ज़ुल्फिकार अली अहमद जलादुद्दीन लखनवी आगा' रखा गया।

रमन बोला, "अब सब ठीक है। नवाब साहब जूते पहनकर दरबार में आएँगे।" राशिद जूते पहनने लगा तो रमन ने कहा, "नवाब साहब अपना काम खुद नहीं करते।" उसने जूते हाथ में लिए और नवाब के सामने अदब से बैठकर पहना दिए।

नसरीन ने दरवाज़े पर खड़े होकर आवाज़ लगाई, "बाअदब, बामुलाहिज़ा होशियार, रियासते आला, नवाबों के नवाब जनाब ज़ुल्फिकार अली अहमद जलालुद्दीन लखनवी आगा तशरीफ ला रहे हैं।" नवाब साहब अकड़कर धीरे-धीरे चलते हुए आए और आसन पर बैठ गए। रमन गया और उसने नवाब साहब के पैर से जूतियाँ उतारकर एक तरफ रख दीं। नवाब की खातिर के लिए पान नहीं था। रमन ने उन्हें एक च्युइंगम पेश की। दूसरी नसरीन को दी, और तीसरी खुद मुँह में रख ली। तीनों च्युइंगम चबाने लगे।

दरबार चलने लगा। बात हो रही थी कि गणित बनाने वाले को क्या सज़ा दी जाए? नवाब साहब गाव-तकियों पर हाथ टिकाए फरियादी रमन की बात सुन रहे थे। तभी उनकी गादी के नीचे से एक कनखजूरा निकला। रेंगते-रेंगते वह गाव-तकिये तक पहुँच गया। रमन और नसरीन डरकर नवाब साहब से दूर हो गए। नवाब साहब भी गद्दे से उठने को हुए तो रमन बोला, "अरे जनाब रुकिए! आप बिना जूतियाँ पहने नहीं चल सकते।" नवाब साहब घबराकर बोले, "मैं ही पहन लेता हूँ।" रमन बोला, "नहीं, नहीं, यह नवाबी तहजीब नहीं है। नवाब साहब क्या अपना काम खुद करेंगे?" नवाब बना राशिद चिढ़कर बोला, "भाड़ में जाए नवाब और ये नवाबियत" और भागने लगा। नसरीन ने आवाज़ लगाई, "बाअदब, बामुलाहिज़ा होशियार, रियासते आला, नवाबों के नवाब जनाब ज़ुल्फिकार अली अहमद जलालुद्दीन लखनवी आगा डरकर भाग रहे हैं।"

बाघ भी पढ़ते हैं?

चन्दन यादव
चित्रः अमृता

लोककथाओं में अकसर यह होता था। इस बार भी हुआ। गाय का सामना एक बाघ से हुआ। गाय चारा खाकर घर जा रही थी। अचानक सामने एक बाघ आ गया। बाघ खुश हो गया। बोला, “अच्छा हुआ तुम मिल गईं। दो-तीन दिन के खाने का इन्तज़ाम हो गया।”

गाय थोड़ा घबराई। उसने गाय को अचानक बाघ मिलने के बारे में बहुत पढ़ रखा था। यह भी पढ़ा था कि बाघ गाय को छोड़ देता है। गाय ने सोचा, क्यों न उसी में से कुछ आज़माया जाए। वो बाघ के हाथ जोड़कर बोली “महाराजाधिराज! इन गर्मियों में ढंग का चारा तक नहीं मिलता। देखो ज़रा, कैसे सूखकर काँटा हो रही हूँ। आप छह-सात दिन की मोहलत दें तो मैं कुछ तन्दुरुस्त होकर आती हूँ।” बाघ बोला, “रहने दे, रहने दे। इस बहाने की असलियत मुझे पता है।”

गाय ने एक और कोशिश की। बोली, “मैं सच में दुबली हूँ पर ज़्यादा ज़रूरी बात ये है कि घर पर मेरा बछड़ा मेरा इन्तज़ार कर रहा है। वो इतना छोटा है कि सिर्फ मेरा दूध ही पी पाता है। आप इज़ाज़त दें तो मैं उसको दूध पिला आऊँ।”

यह सुनकर बाघ झुँझला गया। बोला, “अरे नहीं,

फिर वही ममता और बलिदान की कहानी। मैंने तुम्हें छोड़ा तो तुम बछड़े के साथ वापिस आ जाओगी। और पहले मुझे खाओ, पहले मुझे खाओ का नाटक होने लगेगा। मैं यह सब जानता हूँ।"

"अच्छा रुको।" गाय ने एक आखिरी कोशिश की। "मैं आपको एक कहानी सुनाती हूँ। पसन्द न आए तो मुझे खा लेना। पक्का।" यह सुनकर बाघ मुस्कराया। बोला, "यार तुम पढ़ती बहुत हो। जाओ, छोड़ देता हूँ। पर एक शर्त है। तुम जाकर सब गायों को बताना कि बाघ भी पढ़ते हैं।"

जब मैंने पहली बार जेल देखा

रायना विजयवर्गीय, आठ वर्ष, जयपुर
चित्रः चिन्मई सामन्त

आज मैं पुलिस स्टेशन गई थी। प्रीत दीदी और पापा के साथ। दीदी के पासपोर्ट के वेरिफिकेशन को। माँ ने हमारे साथ जाने से मना कर दिया। उन्हें बहुत सारा लिखना होता है। हमसे बातें करते हुए वह काम करना भूल जाती हैं। हम खूब मस्ती करते हैं। जब हम सो जाते हैं तब वह काम करती हैं। पहले मैं भी पुलिस स्टेशन नहीं जाना चाहती थी। मुझे डर था कि कहीं पुलिस मुझे पकड़ न ले। मैंने कल होमवर्क जो नहीं किया था। लेकिन पापा ने बताया पुलिस ऐसे नहीं पकड़ती। माँ ने हम दोनों को खूब सुन्दर तैयार कर भेजा था।

पुलिस स्टेशन में दो छोटे-छोटे कमरे थे। बाहर दो पुलिस वाले आराम से बैठकर बात कर रहे थे। उनके पास डण्डे भी थे। पापा ने बताया इनको हवलदार कहते हैं। लेकिन जिनसे हमें काम था वे वहाँ नहीं थे। किसी ने बताया कि वह ऊपर हैं। ऊपर गए तो किसी ने कहा कि वह नीचे हैं। मुझे और दीदी को बहुत हँसी आई। हम वापस नीचे आए तो वह मिल गए। उन्होंने मुझे देखते ही हेलो कहा और पूछा, “आप कितने साल के हो?” मैंने बताया कि मैं सात साल की हूँ। सुन कर उन्होंने मेरे सिर पर हाथ फेरा। मुझे वे बिलकुल खतरनाक नहीं लगे। उन्होंने दीदी से भी पूछा कि हम कौन से स्कूल में हैं? वह किसी दोस्त की तरह हमसे बात कर रहे थे। फिर पापा और पुलिस अंकल काम की बात करने लगे और हम इधर-उधर घूमने लगे।

तभी वहाँ मैंने जेल देखा। जेल मैंने सिर्फ फिल्मों में देखा था। यह जेल बहुत

छोटा-सा था। उसमें कोई खिड़की नहीं थी। जेल में दो लोग बन्द थे। वे चाँद, सूरज, फूल और पक्षी नहीं देख पाते होंगे। मुझे उनके लिए बुरा लगा। मैं चाहती थी कि उन्हें पास से देखूँ लेकिन दीदी ने मना कर दिया। उसने कहा कि वह पापा से मेरी शिकायत कर देगी। फिर मैंने दीदी से कहा कि हम उन्हें दूर से देखेंगे तो वह मान गई। दोनों ने सिर्फ निक्कर पहन रखी थी और वे ज़मीन पर सो रहे थे। क्या इन्हें फर्श चुभता नहीं होगा? दीदी ने कहा गलत काम करते हैं तो सज़ा भुगतनी पड़ती है। इन्होंने पता नहीं क्या गलत काम किया होगा? अगर मैं पुलिस अंकल से पूछूँगी तो क्या वह मुझे बताएँगे?

मुझे माँ के गले लगकर सोना अच्छा लगता है। माँ मुझे कहानी सुनाती है। और बहुत प्यार करती है। मैं कभी जेल नहीं जाना चाहती। मुझे फूल और पक्षी बहुत अच्छे लगते हैं। मैं रोज़ उन्हें देखती हूँ। कभी-कभी उनसे बातें भी करती हूँ। मैंने मन ही मन तय किया कि मैं कभी कोई गलत काम नहीं करूँगी।

माइकल आगस्तीन (जर्मन कवि)
अनुवादः मनोज पटेल
चित्रः तापोशी घोषाल

कोई बेस्ट सेलिंग लेखक
टहल रहा है जंगल में
रोको उसे, पेड़ों को बचाओ

जाड़े की शाम

कैथरीन ऐनी पोर्टर (अमरीकी कवि)

अनुवादः मनोज पटेल

चित्रः तापोशी घोषाल

जाड़े की किसी खुली शाम
दूज का चाँद
और बलूत पर बना
गिलहरी का गोल घोंसला
बराबर के ग्रह हो जाते हैं

बहाना

करीम राधी (बहरीनी कवि)

कभी आज़ादी के नाम पर
कभी मातृभूमि के नाम पर
कभी देश के नाम पर
कभी धर्म के नाम पर
कोई नाम नहीं है इस युद्ध का
यह हमेशा उधार के नाम से ही अपना काम चलाता आया है

माँ जब बच्ची थी

मनोज कुमार झा
चित्रः तापोशी घोषाल

माँ जब बच्ची थी तो उन्हें दौड़ना बहुत पसन्द था। वह सहेलियों के साथ दौड़ती रहती। एक बार वह अपनी दादी के साथ देवघर गई। वहाँ से वो कुदनी ले आई थी। अब वो दिन-दिन भर रस्सी कूदती। कबड्डी खेलती। चौर में जाकर जंगली फल चुनती। लेकिन यह मैंने नहीं देखा। मैंने माँ को दौड़ते भी नहीं देखा। तब तक वह मेरी माँ नहीं हुई थी। (पर तब भी वह थी तो मेरी माँ ही।)

ग्यारह साल की उमर में ही माँ की शादी हो गई। मैं जब भी पूछता हूँ कि माँ तेरी शादी कैसे हुई तो वह कहती है कि कुछ जन्तर-मन्तर हुआ और मेरी शादी हो गई।

तेरहवें साल में वह बैलगाड़ी में बैठकर ससुराल आ गई। गाना वगैरह हुआ। माँ बुक्का फाड़कर रो रही थी

और उसे बैलगाड़ी में बिठा दिया गया। वह ससुराल आ गई। एक गीत था-

दुलहिन नाहू नाहू चलियौ ससुर गलिया, ससुर गलिया हे भैंसुर गलिया

(दुलहन धीरे-धीरे चलना ससुर की गली, ससुर की गली है जेठ की गली)।

माँ ससुराल आई और धीरे-धीरे चलने लगी। उसका मन तो तब भी दौड़ने को होता। वह जानना चाहती थी कि उस गाँव के खेत कैसे हैं। वहाँ के बगीचे कैसे हैं। वहाँ के पोखर कैसे हैं। लेकिन वह आँगन के बाहर कैसे जाए!

माँ के उन्नीसवें साल में मेरा जन्म हुआ। घर में ही जन्म हुआ। जिस महिला ने प्रसव कराया वह माँ की दोस्त बन गई। उसी ने माँ को पूरे गाँव के बारे में बताया। चोरों के किस्से, पोखरों के किस्से।

मेरी एक पीसी (बुआ) थीं - मालती पीसी। वो माँ के साथ रहती थीं। माँ उनसे गप्प लड़ाती थीं। मालती पीसी की सहेलियाँ भी माँ के पास आती थीं। ये भी माँ को गाँव की कहानियाँ सुनातीं।

माँ को थोड़ी बहुत मधुबनी पेंटिंग आती थी। मालती पीसी की सहेलियाँ पेंटिंग सीखने भी आतीं। लेकिन माँ को फुर्सत कहाँ थी! ससुराल आने के कुछ दिन बाद से ही उसे घर के कामकाज में लग जाना पड़ा। सत्रह आदमी का परिवार था। माँ को खाना पकाना पड़ता। दादी के साथ वो चक्की पर गेहूँ पीसती। ऊखल में धान कूटती। माँ सब काम कर सकती थी, लेकिन दौड़ नहीं सकती थी। माँ घूँघट डालती थी। माँ को यह अच्छा नहीं लगता। उसका मन कसैला हो जाता। मायके में कितनी आज़ाद थी। माँ से मिलने के लिए मायके से लोग आते। उनको देखकर माँ बहुत रोती। माँ का मन तो करता कि हमेशा मायके में ही रहे। वह सहेलियों से खूब बातें करती। नानी माँ को समझाइश देती रहतीं। माँ ने एक दिन मुझे बताया कि कुछ भी हो जाए मैं अपनी बेटियों की शादी कम उमर में नहीं करवाऊँगी। बहुत दुख झेलने पड़ते हैं।

जब मेरा जन्म हुआ तो माँ उन्नीस बरस की थी। माँ ने मुझे बताया कि वो मुझे गोद में लेकर आँगन में कभी नहीं बैठती। माँ का मन करता कि मुझे गोद में ले आँगन में घूमे। मुझे प्यार करे। लेकिन उसे इसकी मनाही थी। अलबत्ता वे मायके में आई तो मुझे गोद में लेकर खूब घूमीं। लेकिन उसकी सबसे बड़ी साध थी गाँव का बगीचा देखना और वहाँ दौड़ना।

एक दिन बहुत तेज़ आँधी आई। दादी हमको लेकर उस पुराने खपरैल वाले घर में बैठ गई और भजन गाने लगी। आँगन में मालती पीसी ने शोर मचाया कि बगीचे में बहुत आम गिरे होंगे। और वो बगीचे की तरफ दौड़ गईं। मैं चार साल का था और दादी की गोद में था। माँ बताती है कि उसे भी क्या सूझा कि

वह बालटी लेकर मालती पीसी के पीछे दौड़ गई। थोड़ी ही देर में वह आम के बगीचा पहुँच गई। चाचा भी थे। हवा तेज़ थी। पत्ते उड़ रहे थे। आम गिर रहे थे। माँ दौड़-दौड़कर आम चुनने लगी। साड़ी के आँचल को कमर में बाँध लिया। ससुराल को माँ ने मायका कर दिया। इतना तेज़ तो वह कभी मायके में भी नहीं दौड़ी थी। चाचा, 'घर जाइए भाभी, घर जाइए भाभी' चिल्लाते रह गए। माँ ने एक ना सुनी। वह हवा के आवेश में थी। दौड़ने के आवेश में थी और आम के आवेश में थी। कोई एक घण्टे तेज़ हवा चलती रही। माँ घण्टे भर दौड़ती रही। आम चुनती रही। उसकी बालटी पूरी भर गई। घर में आकर माँ बिछावन पर पड़ गई। खूब खुश थी। दादी और पिताजी ने माँ को खूब डाँटा। लेकिन उसे कुछ न सुनाई दिया। वह इस अनोखी खुशी में खोई रही।

ज्बीग्न्येव हेर्बेर्ते, पोलिश कवि
अनुवादः कुँवर नारायण
चित्रः भार्गव कुलकर्णी

दरअसल बहुत ही सम्वेदनशील और नर्वस प्राणी होता है हाथी। गज़ब की कल्पनाशक्ति होती है उसमें, जिसकी वजह से वे यदाकदा अपने डीलडौल को भी भूले रहते हैं। पानी में उतरते तो आँखें बन्द कर लेते। अपने पाँवों को देखकर बेहाल होकर आँसू बहाने लगते। मैं खुद एक ऐसे हाथी को जानता हूँ जिसका एक गाने वाली चिड़िया से इश्क हो गया। उसका वजन घट गया, नींद हराम हो गई। और अन्त में दिल का दौरा पड़ने से उसकी मृत्यु हो गई। जिन्हें हाथियों के स्वभाव के बारे में पता नहीं, यही कहते रहे बहुत मोटा था वह।

प्रस्तुतिः शैलेन्द्र "शैल"
(कुँवर नारायण हिन्दी के प्रसिद्ध कवि थे। हैं। उनकी कविताएँ ढूँढकर पढ़ना।)

इश्तेहार

मयंक टण्डन

चित्रः प्रोइति रॉय

मैंने तितली से पुछा कि वो मुझे अपने पंख पर बिठाके ले जाएगी। वो बोली, "ले तो जाऊँगी, लेकिन एक पंख पर तुम बैठोगे तो दूसरे पंख पर भी तुम्हारे जितने वज़न वाले किसी दोस्त को बैठा लेना इससे बैलेंस बना रहेगा।"

अगर आपको भी तितली के पंख पर सैर करने का मन हो, और वज़न सैंतीस किलो दो सौ बावन ग्राम हो, तो तुरन्त मुझसे सम्पर्क करें।

आर. एन. आई. नम्बर - DELHIN/2018/76181 द्विमासिक

ख्वाजादास का बाल-गीत

भोलू की बहन

चित्रः अतनु राय

भोलू की जो बहना है
उसका हरदम कहना है

भोलापन ही लड़कों का
सबसे अच्छा गहना है

तुमको इससे क्या मतलब
किसने ये क्या पहना है

टोकाटाकी अब बिल्कुल
कब्भी भी ना सहना है

सड़े गले इस सिस्टम को
इक ना इक दिन ढहना है

तू ज़्यादा ऊँचा ना उड़
धरती ही पे रहना है

मुद्रक तथा प्रकाशक संजीव कुमार द्वारा
तक्षशिला पब्लिकेशन - तक्षशिला एजुकेशनल सोसाइटी
की इकाई के लिए मल्टी कलर सर्विसेज़, शेड नम्बर 92,
डी.एस.आई.डी.सी. ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज़ 1,
नई दिल्ली 110020 से मुद्रित एवं सी-404,
बेसमेंट, डिफेंस कॉलोनी, नई दिल्ली 110024 से प्रकाशित
सम्पादक - सुशील शुक्ल